# अनीतिकी राहपर

[ 'संयम बनाम भोग'-संबंधी लेखोंका संग्रह ]

मोहनदास करमचंद

कालिकाप्रसाद

१९५३

सस्ता साहित्य मंडल–प्रकाशन

प्रकाशक—
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबादकी सहमतिसे

सातवीं बार : १९५३
कुल छपी प्रतियाँ : २०,०००
मूल्य
एक रुपया

—मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

# विषय-सूची

# अनीतिकी राहपर

## : १ :

## नीतिनाशकी ओर

कृपालु मित्र मुझे भारतीय पत्रोंके ऐसे लेखोंकी कतरनें भेजा करते हैं जिनमें गर्भ-निरोधके कृत्रिम साधनोंसे काम लेकर सन्तति-नियमनके विचारका समर्थन होता है। युवकोंके साथ उनके वैयक्तिक जीवनके विषयमें मेरा पत्र-व्यवहार दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। मुझे पत्र लिखने-वाले भाई जो सवाल उठाते हैं उनके बहुत ही छोटे भागकी चर्चा मैं इन पृष्ठोंमें कर सकता हूं। अमरीकावासी मित्र भी इस विषयके लेख, पुस्तकें मेरे पास भेजते हैं। और कुछ तो गर्भ-निरोधके कृत्रिम साधनोंके उपयोगका विरोध करनेके कारण मुझपर खफा भी हैं। उन्हें यह देखकर दुःख होता है कि अन्य अनेक विषयोंमें तो मैं बहुत आगे बढ़ा हुआ सुधारक हूं, पर संतति-नियमनके विषयमें मेरे विचार मध्य युगके हैं। मैं यह भी देखता हूं कि गर्भ-निरोधके कृत्रिम साधनोंसे काम लेनेके हिमायतियोंमें कुछ ऐसे स्त्री-पुरुष भी हैं जिनकी गणना दुनियाके बड़े-से-बड़े विचारशील जनोंमें है।

अतः मैंने सोचा कि कृत्रिम साधनोंसे काम लेनेके पक्षमें कोई बहुत ही पक्की दलील होनी चाहिए, और यह भी सोचा कि अबतक इस विषयपर जो-कुछ मैंने कहा है उससे मुझे कुछ अधिक कहना चाहिए। मैं इस प्रश्नपर और इस विषयका साहित्य पढ़नेके बारेमें विचार कर ही रहा था कि 'नीतिनाशकी ओर' ('टुवर्ड्स मॉरल बैंकरप्सी')नामकी पुस्तक मुझे पढ़ने-को दी गई। इस पुस्तकमें इसी विषयका विवेचन है और मेरी समझमें वह शुद्ध शास्त्रीय रीतिसे किया गया है। मूल पुस्तक फ्रांसीसी भाषामें

श्रीपाल व्यूरोने लिखी है, जिसके नामका शाब्दिक अर्थ 'नैतिक अराजकता' होता है। अंग्रेजी उलथा कान्स्टेवल एंड कंपनीने प्रकाशित किया है और उसकी प्रस्तावना डाक्टर मेरी स्कारली सी० वी० ई०, एम० डी० ने लिखी है। उसमें ५३८ पृष्ठ और १५ अध्याय हैं।

पुस्तक पढ़ जानेके वाद मैंने सोचा कि लेखकके विचारोंका सारांश करनेसे पहले विषयके प्रति न्याय करनेकी खातिर कृत्रिम साधनोंसे काम लेनेके पक्षका पोषण करनेवाली प्रमाणभूत पुस्तकें मुझे अवश्य पढ़ लेनी चाहिए। अतः मैंने भारतसेवक-समितिसे अनुरोध किया कि इस विषयका जो साहित्य उसके पास हो वह मुझे थोड़े दिनोंके लिए मँगनी देनेकी कृपा करें। समितिने कृपा कर अपने संग्रहकी कुछ पुस्तकें भेज दीं। काका कालेलकरने, जो इस विषयका अध्ययन कर रहे हैं, हैवलॉक एलिसके ग्रंथके इस विषयका विवेचन करनेवाले खंड दिये, और एक मित्रने 'प्रैक्टिशनर' पत्रका विशेषांक भेजा जिसमें कुछ सुप्रसिद्ध चिकित्सकोंकी वहुमूल्य सम्मतियां संगृहीत हैं।

इस साहित्य-संग्रहका उद्देश्य यह था कि श्री व्यूरोके निष्कर्षोंकी परख, जहां तक एक चिकित्साशास्त्रका ज्ञान न रखनेवाला साधारण मनुष्य कर सकता है, कर लें। यह वात अक्सर देखनेमें आती है कि जव शास्त्र-विशेषके पंडित किसी प्रश्नपर वहस करते हैं तव भी उसके दो पक्ष होते हैं और दोनोंके पोषणमें वहुत-कुछ कहा जा सकता है। अतः मैं चाहता था कि श्री व्यूरोकी पुस्तक पाठकोंके सामने रखनेके पहले गर्भ-निरोधके कृत्रिम साधनोंके समर्थकोंका दृष्टिकोण समझ लूं। अव मेरी पक्की राय है कि कम-से-कम हिन्दुस्तानमें तो कृत्रिम साधनोंके उपयोगकी आवश्यकता सिद्ध नहीं की जा सकती। जो लोग भारतमें उनके उपयोगका समर्थन करते हैं वे या तो यहांकी हालत नहीं जानते या जान-बूझकर उसकी ओरसे आंखें मूंद लेते हैं। पर अगर यह वात सावित कर दी जाय कि उपदिष्ट उपाय पश्चिममें भी हानिकर सिद्ध हो रहे हैं तो भारतकी विशेष परिस्थितिकी छान-वीन करनेकी आवश्यकता ही नहीं रहती।

अतः अव हम यह देखें कि श्री व्यूरो कहते क्या हैं। उन्होंने केवल

फ्रांसकी स्थिति पर विचार किया है। पर फ्रांस कोई छोटी चीज नहीं। दुनियाके जो देश सबसे आगे बढ़े हुए हैं उनमें उसकी गणना है। ऊपर बताए हुए साधन जब वहां विफल हो गये तब अन्यत्र उनके सफल होनेकी आशा नहीं रखी जा सकती।

विफलताके अर्थके विषयमें मतभेद हो सकता है। अतः यहां मैं किस अर्थमें उसका व्यवहार कर रहा हूं यह मुझे बता देना चाहिए। अगर हम यह दिखा सकें कि इन साधनोंके व्यवहारसे नीतिके बंधन ढीले हुए हैं, व्यभिचार बढ़ा है और जहां केवल स्वास्थ्य-रक्षा तथा आर्थिक दृष्टिसे कुटुम्बका अति विस्तार न होने देनेके उद्देश्यसे स्त्री-पुरुषोंको उनसे काम लेना चाहिए था वहां मुख्यतः भोग-वासनाकी तृप्तिके लिए उनका व्यवहार हो रहा है, तो मानना होगा कि उनका विफल होना साबित कर दिया गया। यही मध्यमा वृत्ति है। चरम नैतिक दृष्टि तो प्रत्येक परिस्थितिमें गर्भ-निरोधके साधनोंके उपयोगका निषेध करती है। उन पक्षकी दलील तो यह है कि स्त्री-पुरुषका संयोग तभी जायज है जब उसका प्रयोजन सन्तानोत्पादन हो, उस हेतुके बिना उनका काम-वासनाकी तृप्ति करना सर्वथा अनावश्यक है; वैसे ही जैसे शरीर-रक्षाको छोड़कर और किसी उद्देश्यसे उनका भोजन करना आवश्यक नहीं होता। एक तीसरा पक्ष भी है। यह ऐसे लोगोंका वर्ग है जिनका कहना है कि दुनियामें नीति नामकी कोई चीज है ही नहीं, और है तो उसका अर्थ विषय-वासनाका संयम नहीं बल्कि हर तरहकी भोग-वासनाकी पूर्ण तृप्ति है; हां, इतना ध्यान रहे कि उनसे हमारा स्वास्थ्य इतना न बिगड़ जाय कि हम वासनाओंकी तृप्तिके, जो हमारे जीवनका उद्देश्य है, काबिल ही न रह जायं। मैं समझता हूं कि श्री ब्यूरोने ऐसे अतिवादियोंके लिए अपनी पुस्तक नहीं लिखी है। कारण यह कि उन्होंने उसकी समाप्ति टाममानके इन वचनसे की है—

"भविष्यका मैदान उन्हीं जातियोंके हाथ है जो सदाचारिणी हैं।"

## २ : अविवाहितोंमें नीतिभ्रष्टता

अपनी पुस्तकके पहले भागमें श्री ब्यूरोने ऐसे तथ्य इकट्ठे किये हैं

जिन्हें पढ़कर चित्तको अतिशय खेद होता है। उनसे प्रकट होता है कि फ्रांसमें कैसे विशाल संघटन खड़े हो गये हैं जिनका काम केवल मनुष्यकी अधम वासनाओंकी तृप्तिके साधन जुटा देना है। गर्भ-निरोधके कृत्रिम उपायोंके समर्थकोंका सबसे बड़ा दावा यह है कि उनके इस्तेमालसे गर्भपात-का पाप बंद हो जायगा। पर यह भी टिक नहीं सकता। श्री ब्यूरो कहते हैं—"फ्रांसमें इधर २५ बरससे गर्भ-निरोधके उपायोंका विशेष रूपसे प्रचार रहा है। पर अपराधरूप गर्भपातोंकी संख्या कम न हुई।" श्री ब्यूरोकी रायमें उनकी तादाद उलटे और बढ़ी है। उनका अंदाजा है कि वहाँ हर साल २॥। से ३। लाख तक गर्भपात होते हैं। कुछ बरस पहले लोकमत उनके समाचार सुनकर कांप उठता था, अब यह बात भी नहीं रही।

श्री ब्यूरो लिखते हैं—"गर्भपातके पीछे-पीछे बाल-हत्या, कुल-कुटुम्बके भीतर व्यभिचार और प्रकृति-विरुद्ध पापोंकी पांत पहुंचती है। बाल-हत्याके बारेमें तो इतना ही कहना है कि अविवाहिता माताओंके लिए सब तरहके सुभीते कर दिये गए हैं, और गर्भ-निरोधके साधनोंका उपयोग और गर्भपात बढ़ गया है, फिर भी यह पाप घटनेके बदले और बढ़ा ही है। सभ्य प्रतिष्ठित कहलानेवाले लोग अब उसे वैसी नफरतकी निगाहसे भी नहीं देखते, और मुकदमोंमें जूरी आम तौरसे अभियुक्तको 'निरपराध' ही ठहराया करते हैं।"

गंदे, अश्लील साहित्यकी वृद्धिपर श्री ब्यूरोने एक पूरा अध्याय लिख डाला है। उसकी व्याख्या वह इस प्रकार करते हैं—"साहित्य, नाटक और चलचित्र मनुष्यके थके मनको विश्रांति देने और फिर तरो-ताजा कर देनेके जो साधन उसे दे रहे हैं उनका काम-वासनाको जगाने, भड़काने या दूसरे गन्दे उद्देश्यकी पूर्तिके लिए दुरुपयोग करना।" वह कहते हैं—"इस साहित्यकी हरएक शाखाकी जितनी खपत हो रही है उसका कुछ अंदाजा इस बातसे किया जा सकता है कि इस धंधेको चलानेवाले कैसे चतुर-चूड़ामणि हैं, उनका संघटन कितना बढ़िया है, कितनी विशाल पूंजी इस कारबारमें लगा दी गई है और उसे चलानेके तरीके सर्वांगपूर्णतामें कैसे बेजोड़ हैं।" "इस साहित्यका मनुष्योंके मनपर इतना जबर्दस्त और ऐसा विलक्षण प्रभाव पड़ा है कि व्यक्तिका सारा मानस जीवन उसके रंगसे

रंग गया है, और एक प्रकारके गौण काम जीवनका निर्माण हो गया है जिसका अस्तित्व सर्वांशमें उसकी कल्पनामें ही होता है।"

अनन्तर श्री ब्यूरो श्री लुइसांका यह करुणा-जनक पैराग्राफ उद्धृत करते हैं—

"यह सारा अश्लील और कामज क्रूरतासे भरा साहित्य अगणित मनुष्योंके लिए अति प्रबल प्रलोभनकी वस्तु बन रहा है, और इस साहित्य-की जबर्दस्त खपत असंदिग्धरूपमें बताती है कि कल्पनामें दूसरे काम-जीवनका निर्माण कर लेनेवालोंकी संख्या लाखों तक पहुंचती है। जो लोग इसकी बदौलत पागलखानोंमें पहुंच गये हैं उनका तो जिक्र ही क्या; खासकर आजके-से समयमें जब अखबारों और पुस्तकोंका दुरुपयोग नव और उन अन्तःकरणोंकी सृष्टि कर रहे हैं, जिन्हें टब्लू जेम्स 'अन्तर्जगत्की अनेकता' कहते हैं और जिसमें विचरण कर हर आदमी वर्तमान जीवनके कर्त्तव्योंको भूल सकता है।"

याद रहे, ये सारे घातक परिणाम एक ही मूलगत भ्रमके कुफल हैं। वह यह है कि विषय-भोग, सन्तानकी इच्छाके बिना भी मानव-प्रकृतिके लिए आवश्यक है और उसके बिना पुरुष हो या स्त्री किसीका भी पूर्ण विकास नहीं हो सकता। ज्यों ही यह भ्रम दिमागमें घुसा और मनुष्य जिसे बुराई समझता था उसे भलाईके रूपमें देखने लगा कि फिर वह विषय-वासनाको जगाने और उसकी तृप्तिमें सहायक होनेके नित नये उपाय ढूंढ़ने लगता है।

इसके बाद श्री ब्यूरोने प्रमाण देकर दिखाया है कि आजके दैनिकपत्र, मासिक, परचे, उपन्यास, चित्र और नाटक-सिनेमा किस तरह इस हीन रुचिको दिन-दिन अधिकाधिक भड़का और उसकी तृप्तिकी सामग्री जुटा रहे हैं।

## ३ : विवाहितोंमें नीति-भ्रष्टता

अबतक तो अविवाहित जनोंके नीति-नाशकी कथा कही गई है। इसके बाद श्री ब्यूरो यह दिखाते हैं कि विवाहित जनोंमें नीति-भ्रष्टता

किस हद तक पहुंच रही है। वह कहते हैं—"अमीर, मध्यवित्त और कृषक वर्गोंमें वहुसंख्यक विवाह वड़प्पन दिखाने या धन-संपत्ति पानेके लिए किये जाते हैं।" वहुतसे व्याह अच्छा ओहदा पाने, दो जायदादों, खासकर जमींदारियोंके मालिक वनने, नाजायज सम्वन्धको जायज वनाने, अवैध सन्तानको वैध वनवाने, वुढ़ापे और गठियेकी वीमारीके समय कोई मनसे सेवा-टहल करनेवाला हो इसका उपाय करने और सेनामें अनिवार्य भरतीके समय कौन-सी छावनी पसन्द करें यह तै कर सकनेके लिए भी किये जाते हैं। कुछ व्याह व्यभिचारके जीवनसे ऊवकर दूसरे प्रकारका थोड़ा संयमवाला भोग-जीवन प्राप्त करनेके उद्देश्यसे भी किये जाते हैं।

इसके वाद श्री व्यूरोने उदाहरण और आंकड़े देकर सिद्ध किया है कि इन व्याहोंसे व्यभिचार घटनेके वदले वस्तुतः और वढ़ता है। पत्नीके उन तथोक्त वैज्ञानिक साधनोंने, जो संयोगमें वाधक न होते हुए उसके फलसे वचनेके लिए वनाये गये हैं, इस पतनको जवर्दस्त मदद पहुंचाई है। पुस्तकके उस दुःखद भागको तो मैं छोड़ देता हूं जिसमें व्यभिचार-वृद्धिका विवरण और अदालतकी डिगरीसे होनेवाले पतिपत्नी-विलगाव और तलाकोंके चौंकानेवाले आँकड़े दिए गये हैं। इन विलगावों और तलाकोंकी संख्या पिछले वीस वरसके अंदर दूनीसे अधिक हो गई है। "स्त्री-पुरुष दोनोंके लिए समान नैतिक मानदंड होना चाहिए" इस सिद्धांतके नामपर स्त्रीको जो भोग-वासनाकी मनमानी तृप्तिकी स्वतंत्रता दे दी गई है उसकी भी मैं चलती चर्चा भर कर सकता हूं। गर्भाधान न होने देनेकी क्रियाओं और गर्भपात करानेके उपायोंके पूर्णता प्राप्त कर लेनेसे स्त्री-पुरुष दोनोंको नैतिक वंधनोंसे पूर्ण मुक्ति मिल गई है। ऐसी दशामें अगर खुद व्याहका ही मजाक उड़ाया जा रहा है तो इससे किसीको अचरज-अचंभा न होना चाहिए। व्यूरोने एक लोकप्रिय लेखकके कुछ वाक्य उद्धृत किये हैं! उनका आशय यह है—"मेरे विचारसे व्याह उन वड़े-से-वड़े जंगली रिवाजोंमें से एक है जिन्हें आदमीका दिमाग अवतक सोच सका है। मुझे इस वातमें तनिक शक-शुवहा नहीं कि मानव-समाज अगर न्याय और विवेककी ओर कुछ भी वढ़ा तो यह प्रथा दफना दी जायगी।....पर पुरुष इतना मट्ठर और

स्त्री इतनी कायर है कि जो कानून उनका शासन कर रहा है उससे अच्छे ऊंचे कानूनकी मांग करनेकी हिम्मत वे नहीं कर सकते।"

श्री व्यूरोने जिन क्रियाओंकी चर्चा की है उनके नतीजों और जिन सिद्धांतोंसे उन क्रियाओंका समर्थन किया जाता है उनकी उन्होंने बड़ी बारीकीसे समीक्षा की है। वह कहते हैं—"यह नीति-बंधन तोड़ फेंकनेका आंदोलन हमें नई भवितव्यताओंकी ओर खींचे लिये जा रहा है। पर वे हैं क्या? जो भविष्य हमारे आगे आ रहा है वह क्या प्रगति, प्रकाशन-सौन्दर्य और उत्तरोतर बढ़नेवाले अध्यात्म-भावका होगा? या पीछे लौटने, अंधकार, कुरूपता और पशुभावका होगा जिसकी भूख दिन-दिन बढ़ती जा रही है? यह नैतिक स्वच्छंदता जिसकी स्थापना की गई है क्या दकियानूसी नियमोंके विरुद्ध किये जानेवाले उन फलजनक विद्रोहों, हितकर विप्लवोंमेंसे है जिन्हें आनेवाली पीढ़ियां कृतज्ञताके साथ याद किया करती हैं, इसलिए, कि उनकी प्रगति उनके उत्थानके लिए विशेष कालोंमें अनिवार्य हो जाती है? अथवा वह मानव-मनकी वही आदिम वृत्ति है, जिसकी विरासत उसे अपने आदि पुरुष बाबा आदम[1]से मिली है—जो उन नियमोंके विरुद्ध विद्रोह किया करती है जिनकी कठोरता ही उसे इस योग्य बनाती है कि वह अपनी पाशव प्रेरणाओंके हमलोंके सामने टिक सके? समाजकी रक्षा और जीवनके लिए आवश्यक नियम-बंधनके विरुद्ध यह विनाशकारी विद्रोह तो नहीं है?" इसके बाद वह यह साबित करनेके लिए जबर्दस्त सबूत पेश करते हैं कि इस विद्रोहका फल हर लिहाजसे सत्यानाशी हुआ है। वह खुद जीवनकी ही जड़ काट रहा है।

---

[1]आदम और हौवाको ईश्वरने अदनके बागमें रखा और मालीका काम सौंपा था। उन्हें बगीचेके सब पेड़ोंके फल खानेकी इजाजत थी; पर एक ज्ञान-वृक्षका फल खानेकी मनाही थी। आदमने इस निषेधका उल्लंघन कर ज्ञान-वृक्षका फल चख लिया और इस पापके दंड-स्वरूप अदनके उद्यानसे निकाल दिये गए और देवत्व तथा अमरत्वसे वंचित होकर मृत्युधर्मा हुए।—अनु०

विवाहित स्त्री-पुरुषोंका अपनी वासनाओंको अंकुशमें रखकर जरूरतसे ज्यादा बच्चे न पैदा करनेका यथासंभव यत्न करना एक बात है और मनमाना भोग करते हुए उसके फलसे बचनेके उपायोंकी मदद लेकर सन्तति-नियमन करना बिलकुल दूसरी बात है। पहली सूरतमें मनुष्यको सभी प्रकारसे लाभ है और दूसरीमें हानिके सिवा और कुछ हाथ नहीं लगेगा। श्री ब्यूरोने आंकड़े और नक्शे देकर दिखाया है कि काम-वासनाकी मनमानी तृप्ति करते हुए भी उसके स्वाभाविक फलोंसे बचनेकी गरजसे गर्भ-निरोधक साधनोंका उपयोग दिन-दिन बढ़ रहा है। उसका फल यह हुआ है कि अकेले पेरिसमें ही नहीं, समूचे फ्रांसमें जन्म-संख्या मृत्यु-संख्याकी तुलनामें बहुत घट गई है। फ्रांस जिन ८७ प्रदेशोंमें बंटा हुआ है उनमेंसे ६८में जन्मकी संख्या मृत्युकी संख्यासे नीची है। लोते-गारोंमें १६२ मौतोंके मुकाबलेमें १०० जन्म होते हैं। इसके बाद तार्ने-गारोंका नंबर है। वहां १५६ मौतोंपर १०० जन्मोंका औसत रहता है। जिन १९ प्रदेशोंमें जन्म-संख्या मृत्यु-संख्या-से ऊंची है उनमें से भी कईमें तो यह अन्तर महज नामका है। केवल दस ही रकबे ऐसे हैं जहां मृत्यु-संख्यासे जन्म-संख्याकी अधिकता कहने लायक हो। मोरब्यां और पास-दे-कैलेमें मृत्यु-संख्या सबसे कम है—१०० जन्म पीछे ७२। श्री ब्यूरो हमें बताते हैं कि आबादी घटनेका यह क्रम जिसे वह 'मांगी हुई मौत' कहते हैं। अभी तक चल ही रहा है।

अनन्तर श्री ब्यूरो फ्रांसके सूबोंकी हालतकी तफ़सीलसे जांच-पड़ताल करते हैं और १९१४में नारमंडीके बारेमें लिखी हुई श्री जीदकी पुस्तकसे नीचे लिखा पैराग्राफ उद्धृत करते हैं—"५० बरसके अंदर नारमंडीकी आबादी ३ लाखसे अधिक घट चुकी है। यानी उसकी जन-संख्यामें उतनेकी कमी हो चुकी जितनी समूचे ओर्न जिलेकी आबादी है। हर २० सालमें वह एक जिलेकी जितनी आबादी गंवा देता है और चूंकि उसमें कुल पांच जिले हैं इसलिए सौ सालमें ही उसके हरे भरे मैदान फ्रेंच जनोंसे बिलकुल खाली हो जायंगे। 'फ्रेंच जन' शब्दका व्यवहार मैं जान-बूझकर कर रहा हूं, क्योंकि निश्चय ही दूसरे लोग आकर उनपर कब्जा जमा लेंगे। और ऐसा न हुआ तो यह बड़े दुःखकी बात होगी। जर्मन आस-पासकी खानोंको

खोद रहे हैं और अभी कल ही पहली बार चीनी मजदूरोंका अग्रगामी दस्ता उस जगह उतरा है जहांसे विजयी विलियम¹का जहाज इंग्लैंड-विजयके लिए रवाना हुआ था।" इस पैराग्राफ़की आलोचनामें श्री ब्यूरो कहते हैं—"अन्य अनेक प्रांत हैं जिनकी दशा इससे कुछ अच्छी नहीं।"

इसके बाद श्री ब्यूरो यह लिखते हैं कि जनसंख्याके इस ह्राससे राष्ट्रकी शक्ति भी घटती जा रही है। उनका विश्वास है कि फ्रांससे जो दूसरे देशोंमें जाकर लोगोंका बसना बंद हो गया है उसका कारण भी यही है। फ्रांसके औपनिवेशिक साम्राज्य, व्यापार, फ्रेंच भाषा और संस्कृति इन सबके ह्रासका कारण भी वह इसीको मानते हैं।"

अनन्तर वह पूछते हैं—"क्या संयत सहवासके पुराने रास्तेको छोड़ देनेवाले फ्रेंचजन सुख, समृद्धि, स्वास्थ्य और मनःसंस्कारमें आज अधिक आगे हैं?" इस प्रश्नका उत्तर वह यों देते हैं—"स्वास्थ्यकी उन्नतिके विषयमें तो दो-चार शब्द कह देना ही काफी होगा। हम कितना ही चाहते हों कि सब एतराजोंका एक सिरेसे जवाब दे दें, इस दलीलपर संजीदगीके साथ विचार करना कठिन है कि भोगकी घूंटसे किसीका शरीर अधिक सबल और स्वास्थ्य अधिक अच्छा हो सकता है। हर तरफसे यही रोना सुनाई दे रहा है कि नौजवान और प्रौढ़ सभी पहलेसे निर्बल हो रहे हैं। (प्रथम) महायुद्धसे पहले सैनिक अधिकारियोंको रंगरूटोंकी शारीरिक योग्यताका मानदंड बार बार नीचा करना पड़ता था, और सारे देशमें लोगोंकी कष्ट-सहनकी शक्ति काफी घट गई है। अवश्य यह कहना अन्याय होगा कि केवल संयमका अभाव ही इस सारी गिरावटका कारण है। पर वह और उसके साथ-साथ शराबखोरी, और घर-द्वारकी गंदगी आदि मिलकर इसका बहुत बड़ा कारण बन रहे हैं। और हम जरा बारीक निगाहसे काम लें तो सहज ही देख सकते हैं कि असंयम और उसके पोषक मनोभाव इन दूसरी बुराइयोंके सबसे बड़े सहायक हैं। ...जननेन्द्रियके रोगों—

---

¹नार्मंडीका ड्यूक—१०६६ से १०८७ ई० तक इंगलैंडपर राज्य किया। (जन्म १०२७, मृत्यु १०८७ ई०)

करनेके बाद श्री ब्यूरो कहते हैं—"क्या हमें यह मालूम नहीं है कि राष्ट्रीय संपत्तिमें फ्रांसका स्थान दुनियाके देशोंमें चौथा है और तीसरे नंबरवाले देशसे बहुत पीछे ? फ्रांसने वाणिज्य-व्यवसायमें जो पूंजी लगा रखी है उससे उसे सालाना २५ अरब फ्रांककी आमदनी होती है, जर्मनी को ५० अरबकी होती है।...हमारी जमीनकी मालियत ३५ बरस के अन्दर—१८७९ से १९१४ के बीच–४० अरब फ्रांक घट गई–९२ अरबसे ५२ अरबकी हो गई। देशके सभी जिलोंमें खेती-किसानीका धंधा करनेवालोंकी कमी है और कुछ जिलोंकी दशा तो यह है कि जहां देखो वहां बूढ़े-ही-बूढ़े दिखाई देते हैं।" वह और कहते हैं—"नैतिक उच्छृंखलता और व्यवस्थित प्रयत्नसे प्राप्त वंध्यात्वका अर्थ यह होता है कि समाजकी स्वाभाविक शक्तियां क्षीण हो जायं और सामाजिक जीवनमें बूढ़ोंका पक्का प्राधान्य स्थापित हो जाय।....फ्रांसमें हजार आदमी पीछे केवल १७० बच्चोंका औसत आता है, जब कि जर्मनीमें वह २२० और इंग्लैंडमें २१० है। ...बूढ़ोंकी संख्याका अनुपात जितना होना चाहिए उससे अधिक है, और दूसरे लोग, जिन्होंने नीति-रहित जीवन और प्रयत्न-प्राप्त-वंध्यात्वके फल-स्वरूप जवानीमें ही बुढ़ापेको बुला लिया है, गतबल राष्ट्रके सारे वृद्धजनोचित कायरपनमें हिस्सेदार हो रहे हैं।

इसके बाद श्री ब्यूरो कहते हैं—"हम जानते हैं कि फ्रांसकी जनताका ७०-८० प्रतिशत भाग अपने शासकोंकी इस 'घरेलू बात' (ढीली-ढाली नीति) की ओरसे उदासीन है, क्योंकि किसीकी खानगी जिन्दगीके बारेमें पूछ-ताछ करना ठीक नहीं समझा जाता।" और श्री लियो पोल्डमोनोका निम्नलिखित उक्तिको बड़े खेदके साथ उद्धृत करते हैं—

"निन्दित बुराइयोंके निष्कासनके लिए युद्ध करना और उनसे पीड़ित जनोंका उद्धार करना प्रशंसनीय कार्य है। पर उन लोगोंका क्या उपाय है जिनकी भीरुता यह नहीं जान पाई है कि प्रलोभनोंसे अपनी अन्तरात्मा, अपनी विवेकवृत्तिकी रक्षा किस तरह करनी चाहिए; जिनका साहस एक प्यार या रूठनेकी एक भावभंगीके सामने घुटने टेक देता है;...जो लज्जाको तिलांजलि देकर, बल्कि शायद अपने इस कारनामेपर गर्व करते

हुए, उस प्रतिज्ञाको भंग करते हैं जो उन्होंने अपनी युवा-कालकी जीवन-संगिनीके साथ बड़े उल्लाससे और विधि-विधानके साथ की थी; जो अपनी अति-रंजित और स्वार्थमयी अहन्ताके अत्याचारसे अपने कुटुम्बियोंको ग्रस्त किये रहते हैं? ऐसे आदमी दूसरोंका उद्धार किस तरह कर सकते हैं?"

श्री ब्यूरो अपने कथनका उपसंहार यों करते हैं—

"इस प्रकार हम चाहे जिधर निगाह डालें, हम सदा यही देखते हैं कि हमारे नीति-सदाचारके बन्धन तोड़ देनेका फल व्यक्ति, कुटुम्ब और समाज सबके लिए बहुत बुरा हुआ है, उससे हमारी इतनी हानि हुई है कि वह सचमुच अवर्णनीय है। हमारे युवा जनोंका कामुक आचरण, वेश्या-वृत्ति, गन्दी पुस्तकों, चित्रोंके प्रचार और पैसे, बड़प्पन या भोग-विलासके लिए ब्याह करना, व्यभिचार और तलाक, अपनेसे बुलाया हुआ बांझपन और गर्भपात—इन सबने मिलकर राष्ट्रका तेजबल नष्ट कर दिया और उसकी बाढ़ मार दी है। व्यक्तिमें शक्ति-संचयकी योग्यता नहीं रह गई और जो बच्चे पैदा हो रहे हैं वे संख्यामें कम होनेके साथ-साथ शारीरिक एवं मानसिक शक्तिमें भी पिछली पीढ़ियोंसे हीन होने लगे। 'प्रौढ़ बच्चे और अधिक अच्छे स्त्री-पुरुष'का नारा उन लोगोंको मोह लेता है जो वैयक्तिक और सामाजिक जीवनके विषयमें अपनी जड़वादी दृष्टिके कैदखानेमें पड़े रहकर यह सोचा करते हैं कि हम आदमियोंकी नस्ल भी भेड़-बकरियों और घोड़ोंकी तरह पैदा की जा सकती है। आगस्त काम्तेने इन लोगोंपर तीखा व्यंग्य करते हुए कहा था—'अच्छा होता कि हमारे सामाजिक रोगोंका इलाज करनेके ये दावेदार पशु-वैद्य बने होते, क्योंकि व्यक्ति और समाज दोनोंकी जटिल मनोरचनाका समझ लेना तो उनके बसकी बात नहीं।'

"सच यह है कि मनुष्य जीवनमें जितनी भी दृष्टियोंको ग्रहण करता है, जितने भी निश्चय करता है, जितनी भी आदतें लगाता है उन सबमें एक भी ऐसी नहीं, जो उसके वैयक्तिक और सामाजिक जीवनपर वैसा असर डाले जैसा काम-वासनाकी तृप्तिके विषयमें उसकी दृष्टि, उसके निश्चयों और उसकी आदतोंका पड़ा करता है। चाहे वह उसको बसमें रखे या खुद

उसके इशारे पर नाचता रहे, सामाजिक जीवनके दूर-से-दूर कोनेमें भी उसकी प्रतिध्वनि सुनाई देगी, क्योंकि प्रकृतिका यह विधान है कि हमारे गुप्त-से-गुप्त और निजी-से-निजी कामकी प्रतिक्रिया भी अति व्यापक हो।

"इसी गुप्त विधानकी कृपासे जब हम नीति-नियमका किसी रूपमें उल्लंघन करने लगते हैं तो अपने-आपको यह भुलावा देनेकी कोशिश करते हैं कि हमारे कुकर्मका कोई अधिक बुरा फल न होगा। खुद अपने बारेमें तो पहले हम उससे सन्तुष्ट होते हैं, क्योंकि अपनी रुचि या सुख ही हमारे उस कार्यका हेतु होता है। समाजके विषयमें हम सोचते हैं कि हमारी तुच्छ हस्तीसे वह इतना ऊंचा है कि वह हमारे दुष्कर्मकी ओर आंख उठाकर देखनेका कष्ट भी न करेगा। सर्वोपरि, हम मन-ही-मन यह आशा रखते हैं कि दूसरे सब लोग सच्चे और सदाचारी बने रहेंगे। सबसे बुरी बात यह है कि जबतक हमारा आचरण असाधारण और अपवाद-रूप कार्य होता है तबतक यह कापुरुषोचित आशा प्रायः सफल होती रहती है। फिर इस सफलतासे फूलकर हम बार-बार वही आचरण करने लगते हैं और जब उसे करना होता है उसे जायज मान लेते हैं। यही हमारे कर्मका सबसे बड़ा दण्ड है।

"पर एक वक्त आता है जब इस आचरणके द्वारा उपस्थित किया हुआ उदाहरण हमें और तरहसे धर्म-च्युत करनेका भी कारण होता है। हमारा हर एक दुष्कर्म 'दूसरों' में जिस धर्मनिष्ठताका हम विश्वास रखते आये हैं उसको अपनेमें पैदा करना अधिक कठिन, अधिक वीरोचित कार्य बना देता है। हमारा पड़ोसी भी बार-बार ठगे जानेसे खीझकर हमारी नकल करनेको अधीर हो जाता है। बस उसी दिनसे हमारा अधःपात प्रारम्भ होता है और हर आदमी यह सोच सकता है कि उसके दुष्कर्मोंके क्या-क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं और उसकी जिम्मेदारी कितनी बड़ी है।

"अपने गुप्त कर्मको हम जिस तहखानेमें छिपा हुआ मानते थे उससे वह निकल आता है। उसमें अंतःप्रवेशकी शक्ति होती है जिससे वह समाजके

अंगोंमें व्याप्त हो जाता है। सभी सबके रोगका फल भुगतते हैं, क्योंकि हमारे कर्मोंका प्रभाव भंवरसे उठनेवाली नन्हीं लहरोंकी तरह समाज-जीवनके दूर-से-दूरके कोनों तक पहुंचता है।

"नीति-नाश जातिके रत्न-स्रोतोंको तुरंत सुखा देता है और जवानोंको झटपट बुढ़ापेकी ओर ढकेलकर शरीर और मन दोनोंसे निर्बल बना देता है।"

## ४ : इलाज—संयम और ब्रह्मचर्य

नीति-नाश और गर्भनिरोधके कृत्रिम साधनोंके उपयोगसे उसकी वृद्धि तथा उसके भयावह परिणामोंकी चर्चा करनेके बाद श्री ब्यूरोने इस बुराईको दूर करनेके उपायोंपर विचार किया है। उन्होंने पहले कानून-कायदोंकी मदद-से इसे रोकनेके प्रश्न और उनकी आवश्यकतापर विचार किया है और उन्हें नितांत व्यर्थ बताया है। पुस्तकके इस अंशकी चर्चा मुझे छोड़ देनी होगी। इसके बाद उन्होंने अविवाहितके लिए ब्रह्मचर्यकी, मानव जातिका जो बहुत बड़ा भाग सदाके लिए अपनी काम-वासनाको जीत नहीं सकता उनके लिए ब्याहकी, विवाहित स्त्री-पुरुषके लिए एक-दूसरेके प्रति सच्चा, वफादार रहने तथा विवाहित जीवनमें संयमकी और इनके पक्षमें लोकमत तैयार करनेकी आवश्यकतापर विचार किया है। "ब्रह्मचर्य स्त्री-पुरुषकी प्रकृतिके विरुद्ध है और उसके स्वास्थ्यके लिए हानिकारक है। वह व्यक्तिकी स्वतंत्रता और उसके सुखपूर्वक जीने तथा जिस जगह चाहे रहने-सहनेके अधिकार-पर असह्य आघात है।" इस तर्ककी उन्होंने समीक्षा की है। वह इस सिद्धांतको सही माननेसे इन्कार करते हैं कि 'जननेंद्रिय भी और इंद्रियों जैसी है और उसे भी काम मिलना ही चाहिए।' वह पूछते हैं—"ऐसा है तो हमारी संकल्प-शक्तिको जो काम-वासनाको पूरी तरह रोक रखनेकी शक्ति प्राप्त है, उससे या इस तथ्यसे हम इसका मेल किस तरह बैठायेंगे कि कामवासनाका जगना उन अगणित उत्तेजनाओंका फल होता है जिन्हें हमारी सभ्यता वयःप्राप्तिके कई बरस पहले ही हमारे नवयुवकों और नवयुवतियोंके लिए जुटा देती है ?"

संयमसे स्वास्थ्यकी हानि नहीं होती, वल्कि वह स्वास्थ्यके लिए आवश्यक है और सर्वथा साध्य है। इस दावेकी पुष्टिमें, पुस्तकमें जो वहुमूल्य डाक्टरी शहादतें इकट्ठी की गई हैं, उन्हें उद्धृत करनेका लोभ मैं रोक नहीं सकता।

टविंगन विद्यापीठ (जर्मनी) के प्रोफेसर ओस्टरलेन लिखते हैं—"काम-वासना इतनी प्रवल नहीं होती कि नीति-वल और विवेकसे वह दवाई, वल्कि पूरी तरह वशमें न लाई जा सके। युवतियोंकी तरह युवकोंको भी योग्य वय प्राप्त होने तक उसे कावूमें रखना सीखना चाहिए। उन्हें जानना चाहिए कि इस इच्छाकृत त्यागका फल तगड़ा शरीर और हमेशा ताजादम वना रहनेवाला वल-उत्साह होता है।"

"इस वातको चाहे जितनी वार दुहराइये, अधिक न होगा कि भोग-विलास और पूर्ण पवित्र-जीवनका शरीरशास्त्र (फिजियालोजी) और नीतिशास्त्रके नियमोंके साथ पूरा मेल है, और असंयत विषय-भोगका शरीरशास्त्र तथा मानसशास्त्र भी उतना ही विरोध करते हैं जितना धर्म और नीति।"

लंदनके रायल कालिजके प्रोफेसर सर लायोनल वील कहते हैं—"श्रेष्ठ पुरुषोंके उदाहरणोंसे यह वात सदा सिद्ध हुई है कि हमारी सवसे दुर्दम वासनाएं दृढ़ और पक्के संकल्पसे और रहने-सहनेके तरीके तथा काम-धंधेके वारेमें काफी सावधानी रखकर कावूमें लाई जा सकती हैं। ब्रह्मचर्यसे कभी किसीको हानि नहीं हुई वशर्ते कि वह किसी तरहकी लाचारीसे नहीं वल्कि खुशीसे अपनाई हुई जीवन-विधिके रूपमें धारण किया गया हो। सार यह है कि कौमार्य इतना कठिन नहीं है कि चल न सके, पर शर्त यह है कि वह मनकी अवस्था-विशेषकी वाह्य अभिव्यक्ति हो। . . .ब्रह्मचर्यका अर्थ केवल इन्द्रिय-संयम नहीं होता, मनके भावोंका निर्मल होना और वह शक्ति भी होता है जो पक्के विश्वाससे मिला करती है।"

स्विट्जरलैंडके मानसशास्त्री फारल कामसंवंधी अनियमितताओंकी चर्चा कैसे सौम्य भावसे करता है—जो उसके पाण्डित्यके सर्वथा अनुरूप है। वह कहता है—"व्यायामसे नाड़ी-संस्थानकी हर एक क्रिया तेज और सशक्त होती है। इसके विपरीत अंगविशेषकी निष्क्रियता उस उत्तेजित करनेवाली

बातोंका असर घटा देती है। काम-प्रवृत्तिको छेड़नेवाली सभी बातें भोगकी इच्छाको भड़काती हैं। इन उत्तेजनाओंसे बचते रहें तो वह कुछ मन्द हो जाती है और धीरे-धीरे बहुत घट जाती है। युवक-युवतियोंमें यह खयाल फैला हुआ है कि संयम प्रकृतिविरुद्ध और अनहोनी बात है। पर बहुसंख्यक जन, जो उसका पालन कर रहे हैं, इस बातको सिद्ध कर रहे हैं कि स्वास्थ्य-की किसी तरह हानि किये बिना ब्रह्मचर्यका पालन किया जा सकता है।"

रिबिगका कहना है—"२५, ३० या इससे भी ऊंची उम्रके कितने ही व्यक्तियोंको मैं जानता हूं, जिन्होंने पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन किया या जिन्होंने ब्याह होने तक उस नियमको निबाहा। ऐसे लोग इने-गिने नहीं हैं, हां वे अपना ढिंढोरा नहीं पीटते फिरते। मुझे तन-मन दोनोंसे स्वस्थ कितने ही विद्यार्थियोंके गोपनीय पत्र मिले हैं, जिन्होंने मुझे इसलिए कोसा है कि विषय-वासनाको वशमें लाना कितना सहज है, इसपर मैंने उतना जोर नहीं दिया जितना देना चाहिए था।"

डाक्टर ऐक्टन कहते हैं कि "ब्याहके पहले युवकोंको पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए।"

ब्रिटिश राज-दरबारके चिकित्सक सर जेम्स पेजेटका कहना है कि "ब्रह्मचर्यसे जिस तरह आत्माकी हानि नहीं होती, उसी तरह शरीरकी भी नहीं होती। संयम सर्वश्रेष्ठ आचार है।"

डाक्टर ई० पेरिये लिखते हैं—"पूर्ण ब्रह्मचर्यको तन्दुरुस्तीके लिए खतरनाक मानना एक विचित्र भ्रम है। इस भ्रमकी जड़ खोद डालनी चाहिए, क्योंकि यह बच्चोंके ही नहीं बापोंके मनको भी बिगाड़ रहा है। ब्रह्मचर्य युवकोंके लिए शारीरिक, मानसिक और नैतिक तीनों दृष्टियोंसे कवच-रूप है।"

सर ऐंड्रू क्लार्क कहते हैं—"संयमसे कोई हानि नहीं होती, शरीरकी बाढ़में बाधा नहीं होती। वह शक्तिको बढ़ाता और मन-इन्द्रियोंको तेज करता है। असंयम मन-इंद्रियोंको वशमें रखनेकी शक्ति घटाता, ढिलाईकी आदत लगाता, जीवनकी सारी क्रियाओंको मंद करता और बिगाड़ता और ऐसे रोगोंको निमंत्रण देता है जिनकी विरासत कई पीढ़ियों तक चली जाय।

कामवासनाकी असंयत तृप्ति युवकोंके स्वास्थ्यके लिए आवश्यक है, यह कहना भूल ही नहीं उनके प्रति अत्याचार भी है। यह कथन असत्य और हानिकर दोनों है।"

डाक्टर सर क्लेड लिखते हैं—"असंयत विषयभोगकी बुराइयां निर्विवाद हैं, पर संयमकी बुराइयां कपोलकल्पना मात्र हैं। पहलीके विवेचनमें बड़े-बड़े पोथे लिखे गए हैं, पर दूसरीको अभी तक अपना इतिहास लिखनेवाले-का इन्तज़ार है। संयमसे होनेवाली हानिके बारेमें जो कुछ कहा जाता है, वह कुछ गोल-मटोल बातें हैं जिन्हें बातचीतके दायरेके बाहर आने और समीक्षाकी कसौटीपर चढ़नेकी हिम्मत नहीं होती।"

डाक्टर मोंते गाजा 'लाजिफियालोजी देलामूर' (कामका शरीरशास्त्र) नामकी पुस्तकमें लिखते हैं—"ब्रह्मचर्यसे किसीको कोई रोग हुआ हो यह अबतक मैंने नहीं देखा।...सभी लोग, खासकर युवा पुरुष, उसके तुरंत होनेवाले लाभोंका अनुभव कर सकते हैं।"

बर्न (स्विट्जरलैंड)के नाड़ीसंस्थानके रोगोंकी चिकित्साके यशस्वी अध्यापक डाक्टर दुबॉय लिखते हैं—"नाड़ीसंस्थानकी दुर्बलता—दिल-दिमागकी कमज़ोरीके मरीज़ जितने उन लोगोंमें मिलते हैं, जो अपनी कामवासनाकी लगाम बिलकुल ढीली किये रहते हैं, उतने उन लोगोंमें नहीं जो जानते हैं कि अपनी पाशव-प्रवृत्तियोंकी गुलामीसे कैसे बचा जा सकता है। बिसेत्र अस्पतालके चिकित्सक डाक्टर फेरे उनकी इस शहादतकी पूरी तरह पुष्टि करते हैं। वह कहते हैं कि जो लोग अपने मनको निर्मल रख सकते हैं वे अपने स्वास्थ्यकी ओरसे निर्भय रहकर ब्रह्मचर्यका पालन कर सकते हैं। स्वास्थ्य कामवासनाकी तृप्तिपर अवलंबित नहीं होता।

प्रोफेसर आलफ्रेद फूर्नियें लिखते हैं—"ब्रह्मचर्य रखनेसे युवकोंके स्वास्थ्यके लिए खतरा होनेके बारेमें कुछ अयुक्त और गम्भीरतारहित बातें कही जाती हैं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि ये खतरे अगर सचमुच हैं तो मैं उनके बारेमें बिलकुल ही अनजान हूं और एक चिकित्सककी हैसियतसे मुझे अबतक उनके अस्तित्वका प्रमाण नहीं मिला है, यद्यपि अपने धंधेके सिलसिलेमें मुझे उनकी जानकारी होनेका पूरा मौका हासिल

था। इसके सिवा शरीर-शास्त्रका अध्ययन करनेवालेकी हैसियतसे मैं यह भी कहूंगा कि मोटे हिसाब २१की उम्रके पहले सच्चा वीर्य या पुंसत्व नहीं प्राप्त होता, और दूषित उत्तेजनाएं कामवासनाको समयसे पहले जगा न दें तो तबतक सहवासकी आवश्यकता भी नहीं पैदा होती। कामवासनाका समयसे पहले जगना अस्वाभाविक बात है और आम तौरसे बच्चोंका लालन-पालन गलत तरीकेसे किये जानेका फल होता है।

"कुछ भी हो इतना तो पक्का समझिये कि काम-वासनाको समयसे पहले जगाने और तृप्त करनेमें जितना खतरा होता है उसे रोकने-दबानेमें उससे कहीं कम होता है।"

ये अति प्रामाणिक शहादतें, जो आसानीसे बढ़ाई जा सकती हैं, पेश करनेके बाद श्री व्यूरो अन्तमें वह प्रस्ताव उद्धृत करते हैं जिसे १९०२ ई० में ब्रसेल्स (बेल्जियम) में हुए रोगोंसे बचनेके उपायोंपर विचार करनेवाले दूसरे सार्वदेशिक सम्मेलनमें उपस्थित १०२ चिकित्सा-पंडितोंने एक मतसे स्वीकार किया था। इस सम्मेलनके प्रतिनिधि अपने विषयके दुनियामें सबसे अधिक प्रामाणिक पंडित थे। प्रस्तावका भाव यह है--"युवकोंको यह बता देना और सब शिक्षाओंसे अधिक आवश्यक है कि संयम और ब्रह्मचर्यसे उनके स्वास्थ्यकी कोई हानि नहीं हो सकती; बल्कि शुद्ध चिकित्सा-शास्त्र और स्वास्थ्य-विज्ञानकी दृष्टिसे भी इन गुणोंको अपनानेकी उनसे पूरे जोरके साथ सिफारिश की जानी चाहिए।"

अनन्तर श्री व्यूरो लिखते हैं--"क्रिस्टियानिया (नार्वे) विद्यापीठके चिकित्सा-विभागके अध्यापकोंने कुछ बरस पहले सर्वसम्मतिसे यह घोषणा की थी कि 'संयमका जीवन स्वास्थ्यकी हानि करनेवाला है' यह कथन हमारे सर्वस्वीकृत अनुभवके अनुसार निराधार है। पवित्र और सदाचारयुक्त जीवनसे कोई हानि होनेकी बात हमें मालूम नहीं।"

"इस प्रकार सारा मुकदमा सुन लिया गया और समाजशास्त्री तथा नीतिशास्त्री अब श्री रुइसांके स्वरमें स्वर मिलाकर इस बुनियादी और शरीरशास्त्र द्वारा अनुमोदित सत्यकी घोषणा कर सकते हैं कि 'काम-वासना आहार और अंगोंसे काम लेनेकी आवश्यकताओं जैसी वस्तु नहीं है जिसका

एक खास हद तक तृप्त होना आवश्यक हो। यह सत्य है कि कुछ असाधारण कोटिके, किसी तरहकी विकृतिसे पीड़ित जनोंको छोड़कर, और सभी स्त्री-पुरुष संयम, पवित्रताका जीवन बिता सकते हैं, इससे न उनके जीवनमें कोई बड़ा उपद्रव उपस्थित होगा और न कोई क्लेश ही होगा। इस बातको जितनी बार भी दुहराएं अधिक न होगा, क्योंकि ऐसी बुनियादी सचाइयोंकी उपेक्षा होना सामान्य बात है, कि ब्रह्मचर्यके पालनसे साधारण स्त्री-पुरुषोंको, जिनके तन-मनकी बनावटमें कोई खास खराबी नहीं है—और १०० में ९८-९९ ऐसे ही लोग होते हैं—कभी कोई रोग कष्ट नहीं होता, पर अनेक भयानक और सर्वविदित बीमारियां असंयत विषय-भोगका ही प्रसाद होती हैं। शुक्र-शोणितके अतिरेकका अति सरल और अचूक उपाय प्रकृतिने स्वप्नदोष और रजोधर्मके रूपमें कर ही दिया है।

"अतः डाक्टर बीरीका यह कहना बिलकुल सही है कि यह प्रश्न किसी सच्ची प्राकृतिक प्रेरणा या आवश्यकताकी तृप्ति-पूर्तिका नहीं है। हर आदमी जानता है कि क्षुधा की तृप्ति न करने या सांस लेना बन्द कर देनेका दण्ड उसे क्या मिलेगा। पर कोई किसी तात्कालिक या लम्बी बीमारीका नाम नहीं बता सकता जो थोड़े दिनों तक या यावज्जीवन ब्रह्मचर्य-पालनसे पैदा होती हो। साधारण जीवनमें हम ऐसे ब्रह्मचर्यधारियोंको देखते हैं जिनका चरित्र किसीसे कम बलवान् नहीं है, जिनका शरीर भी दूसरोंसे कम तगड़ा नहीं और ब्याह करें तो सन्तानोत्पादनके सामर्थ्यमें भी किसीसे पीछे नहीं है। जिस आवश्यकतामें इतना उतार-चढ़ाव हो सकता है, जो नैसर्गिक प्रेरणा-तृप्तिके अभावको इतनी आसानीसे सह लेती है, वह न आवश्यकता हो सकती है न प्रकृतिसे प्राप्त प्रेरणा।"

"कामवासनाकी तृप्ति बढ़नेवाली वयके बालककी किसी शारीरिक आवश्यकताकी पूर्ति नहीं करती, बल्कि उलटे पूर्ण ब्रह्मचर्य ही उसकी साधारण बाढ़-विकासके लिए अत्यावश्यक है, और जो लोग उसको भंग करते हैं वे अपने स्वास्थ्यकी कभी पूरी न हो सकनेवाली हानि करते हैं। कोई बालक या बालिका जब जवान होने लगती है तो उसके तन-मनमें बहुतसे गहरे उलट-फेर होते हैं, अनेक शारीरिक क्रियाओंमें सच्ची गड़बड़

पैदा हो जाती है। सारा शरीर बढ़ता, पुष्ट होता है। किशोर अवस्थावाले बालकको अपनी सारी शक्ति बटोर रखनेकी जरूरत होती है, क्योंकि इस उम्रमें अक्सर रोगोंका आक्रमण रोकनेकी शक्ति घट जाती है और इस उम्रवाले और छोटी उम्रवालोंकी तुलनामें अधिक बीमार होते तथा मरते हैं। शरीरकी सामान्य बाढ़का लम्बा काम, विभिन्न अंगों, इन्द्रियोंका विकास, देह और मनमें लगातार होनेवाले वे बहु-संख्यक परिवर्तन जिनके अन्तमें बालक पुरुष बनता है, ये सब ऐसे काम हैं जिनके लिए प्रकृतिको गहरी मेहनत करनी पड़ती है। ऐसे नाजुक वक्तमें हर तरहका अतिरेक, किसी भी अंग-इन्द्रिय-से अधिक काम लेना, खतरनाक है, जननेन्द्रियका समयसे पहले उपयोग तो खास तौरसे खतरनाक है।"

## ५ : व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी दलील

ब्रह्मचर्यके शारीरिक लाभोंकी चर्चा करनेके बाद श्री ब्यूरो उसके नैतिक और मानसिक लाभ बतानेके लिए प्रोफेसर मोंतेगाजाकी पुस्तकका निम्नलिखित अंश उद्धृत करते हैं—

"सभी लोग, खासकर युवक, ब्रह्मचर्यके तत्काल होनेवाले लाभोंका अनुभव कर सकते हैं। स्मृति स्थिर और धारक, मस्तिष्क सजीव और उद्भावनाक्षम हो जाता है। संकल्प-शक्ति सबल-सतेज हो जाती है। सारे चरित्रमें वह बल आ जाता है कामुक जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। ब्रह्मचर्यका तिनपहला शीशा हमारे आसपासकी सारी चीजोंको, हमारी दुनियाको जैसे स्वर्गीय रंगोंसे रंजित कर देता है वैसा और कोई कलम नहीं कर सकती। विश्वकी छोटी-से-छोटी चीजको भी वह अपनी किरणोंसे आलोकित कर देता है, हमें उस नित्य सुखके शुद्धतम आनन्दमें पहुंचा देता है जो न घटना जानता है और न छीजना। ब्रह्मचारीका आनन्द, हार्दिक उल्लास और प्रसन्नतासे भरा आत्मविश्वास और उसके विषयवासनाके गुलाम साथियोंके बेचैन किये रहनेवाले बद्धमूल विचार और बौखलाहटमें कैसा दिन-रातका-सा अन्तर है!"

संयमके लाभोंकी बहुलता और ऐयाशीके कुपरिणामोंसे तुलना करते

हुए लेखक कहता है—"संयमसे पैदा होनेवाले किसी रोगका नाम कोई नहीं बता सकता, पर असंयत विषयभोगसे होनेवाली डरावनी बीमारियोंको कौन नहीं जानता ? देह तो सड़ी-गली चीज बनती ही जाती है, कल्पना-शक्ति, हृदय और बुद्धिकी दशा और भी बुरी हो जाती है । हर तरफसे चरित्रके पतन, युवकोंकी उद्दाम कामुकता और स्वार्थपरताकी बाढ़का रोना सुनाई देता है ।"

यह तो हुई वीर्य-व्ययकी तथोक्त आवश्यकता और उसके कारण व्याहके पहले युवकोंके नीतिकी लगाम कुछ ढीली रखनेके औचित्यकी बात । इस आजादीके हिमायती यह भी कहते हैं कि कामवासनाका नियंत्रण मनुष्यके अपने शरीरसे चाहे जिस तरह काम लेनेकी स्वतंत्रताका हरण है । लेखक सबल दलीलोंसे यह सिद्ध करता है कि समाजशास्त्र और मानसशास्त्रकी दृष्टिसे यह रोक आवश्यक है । वह कहता है—

"सामाजिक जीवन केवल बहुविध संबंधोंका एक जाल, क्रियाओं और प्रतिक्रियाओंका ताना-बाना है । उसके बीच कोई ऐसा काम हो ही नहीं सकता जिसे हम दूसरोंसे बिलकुल अलग, असम्बद्ध कह सकें । हम जो कुछ भी करनेका निश्चय या यत्न करें, हमारी अखण्डता, हमारा एक-दूसरेसे लगा-जुड़ा होना हमारे निश्चय और कार्यका संबंध हमारे भाइयोंके विचारों और कार्योंसे जोड़ देगा । हमारे छिपे विचार और छन भरके लिए मनमें उठनेवाली कामवासनाकी प्रतिध्वनि भी इतनी दूर तक पहुंचती है कि हमारा मन उस दूरीका अंदाजा नहीं कर सकता । सामाजिकता मनुष्यका ऐसा गुण नहीं है जो बाहरसे लिया गया हो या जिसका काम किसी और गुप्त वृत्तिका पोषण मात्र हो । वह तो उसका सहज गुण है, उसकी मनुष्यताका ही अंग है । वह सामाजिक इसीलिए है कि वह मनुष्य है । हमारे कामोंका दूसरा कोई भी मैदान इसके जितना सच्चे अर्थमें हमारा अपना नहीं । शरीरशास्त्र और नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजनीति, बुद्धि और सौन्दर्य-भावनाके कार्य-क्षेत्र, हमारे धार्मिक और सामाजिक कार्य—सभी एक विश्वव्यापी विधानके साथ रहस्यभरे सूत्रोंसे बंधे और अनिर्दिष्ट संबंधोंसे जुड़े हुए हैं । यह बंधन इतना दृढ़ है, जाल इतना गठकर

चुना हुआ है कि बेचारा समाजशास्त्री सम्पूर्ण देश और कालको अतिक्रमण करके उसके सामने खड़ी इस विराट्‌सत्ताको देखकर कभी-कभी चक्करमें आ जाता है। वह एक ही निगाहमें इसका अंदाजा कर लेता है कि कुछ विशेष अवस्थाओंमें व्यक्तिकी जिम्मेदारी कितनी बड़ी होती है, और कुछ सामाजिक हल्के उसे जो आजादी देनेके इच्छुक हो सकते हैं उसे स्वीकार कर वह किस तरह क्षुद्र बन जानेकी जोखिम उठाता है।"

लेखक और कहता है—"अगर हम कह सकते हैं कि कुछ खास हालतोंमें हमें सड़कपर थूकनेकी आजादी नहीं है...तो अपनी कामशक्ति, अपने वीर्यको जिस तरह चाहें खर्च करनेका अधिकार, जो उससे अधिक महत्वकी वस्तु है, हमें कैसे मिल सकता है ? क्या यह शक्ति अखण्डताके विश्वव्यापी विधानके बाहर है ? उलटा हर आदमी यह देख सकता है कि उक्त क्रियाके आत्यन्तिक महत्त्वके कारण वैयक्तिक कार्यकी समाजपर होनेवाली प्रतिक्रिया और बढ़ जाती है। इस नवयुवक और नवयुवतीको देखिये जिन्होंने अभी-अभी वह नाजायज संबंध जोड़ा है जिसका हर पाठक को ज्ञात है। उन्होंने मान लिया है कि इस सम्भोगका संबंध केवल उन्हींसे है, और किसीसे नहीं। अपनी स्वाधीनताके भ्रममें वे यह मान लेते हैं कि हमारे निजी और गुप्त कार्योंसे समाजको कोई वास्ता-सरोकार नहीं, और ये उनके नियंत्रणसे बिलकुल बाहर हैं। ऐसा सोचना उनकी निरी खामखयाली है। समाजकी जो अखण्डता एक राष्ट्रके लोगोंको और उससे भी आगे जाकर सम्पूर्ण मानव-जातिको एक लड़ीमें पिरोती है उसे सभी तरहकी दीवारों—शयनागारोंकी दीवारोंका भेदन करनेमें भी कोई कठिनाई नहीं होती। परस्पर-संबंधकी एक जबर्दस्त जंजीर हमारे निजी माने जानेवाले कार्योंको जिसे समाज-जीवनके विघटनमें वे सहायक हो रहे हैं उसके हजारों कोस दूरके कर्म-कलापोंके साथ भी जोड़ देती है। हर आदमी जो यह कहता है कि—किसीके साथ कुछ दिनोंके लिए या गर्भ-धारणका बचाव करते हुए पति-पत्नी संबंध स्थापित करनेका अधिकार है, उसे इसकी आजादी है कि प्रकृतिसे प्राप्त अपनी जनन-शक्ति—अपने वीर्यका—केवल अपने आनंदके लिए उपभोग करे, वह चाहे या न चाहे पर वह समाजके अंदर भेद-विलगाव और

विश्रृंखलताके बीज वो रहा है। हमारी सभी सामाजिक संस्थाएं हमारी स्वार्थपरता और उनके प्रति अपने कर्त्तव्यके अपालनसे विकृत तो हो ही रही हैं, वे यह मान लेती हैं कि कामवासनाकी तृप्तिके साथ जो जिम्मेदारी आती है हर आदमी उसे खुशीसे उठा लेगा। इस स्वीकृतिको मानकर ही समाजने श्रम और संपत्ति, मजदूरी और वरासत, कर और सैनिक रूपमें राष्ट्रकी सेवा आदि अगणित व्यवस्थाएं बनाई हैं। पार्लमेंटके चुनावमें मत देनेका अधिकार और नागरिक स्वतंत्रताके इस बोझको उठानेमें अपना कंधा लगानेसे इनकार करके व्यक्ति सामाजिक समझौतेके मूल तत्त्वपर ही हरताल फेरता है, और चूंकि वह ऐसा करके दूसरोंका बोझ और बढ़ा देता है इसलिए वह दूसरोंका शोषण करनेवाले, दूसरोंकी कमाईपर जीनेवाले चोर और ठगसे अच्छा कहलानेका अधिकारी नहीं है। हम अपनी और सभी शक्तियोंके समान अपनी शारीरिक शक्तिके सदुपयोगके लिए भी समाजके सामने जवाबदेह हैं, और चूंकि वह निहत्था और बाहरी दबावके साधनोंसे लगभग बिलकुल ही रहित होनेके कारण उस शक्तिको समझदारीके साथ और समाजके भलेका ध्यान रखते हुए काममें लानेका भार हमारे सद्भावको ही सौंप देनेको लाचार है, इसलिए हमारी यह जिम्मेदारी और बड़ी मानी जा सकती है।

लेखक मानसशास्त्रके आधारपर भी अपनी बात उतनी ही जोरसे कहता है। उसका कहना है—"स्वाधीनता ऊपरसे देखनेमें तो राहत या कष्टसे छुटकारा है, पर वास्तवमें वह एक भारी बोझ है। यही उसकी महत्ता भी है। वह हमें बांधती और विवश करती है। जितनी कोशिश करना हर आदमी पर फ़र्ज़ है, वह उससे अधिक करनेका आदेश देती है। व्यक्ति स्वाधीन होना चाहता है, अपनी स्वतंत्रताका विकास करके अपने आपको व्यक्त करने, अपनी आकांक्षाओंको कार्यरूप देनेकी इच्छा उसके अंतरमें प्रज्वलित है। यह काम देखनेमें तो बहुत सहल और बहुत सीधा जान पड़ता है। पर पहला ही अनुभव उसे बता देता है कि वह कितना टेढ़ा और पेचीदा है। एकता हमारी प्रकृति और हमारे नैतिक जीवनकी प्रधान विशेषता है। हम अपने अंतरमें बहुविध और परस्पर-विरोधिनी

प्रेरणाओंका अनुभव करते हैं; उनमेंसे हरएकमें हमें अपने-आपका पता होता है। फिर भी हर बात हमें बताती है कि हमें उनमें कुछका ग्रहण और कुछका त्याग करना होगा। युवा पुरुष, तुम कहोगे कि मैं अपनी इच्छाओं, विचारोंका जीवन बिताना चाहता हूं, अपने-आपको व्यक्त करना चाहता हूं। पर महान् शिक्षक फारेस्टरके शब्दोंमें हम तुमसे पूछते हैं कि तुम अपने व्यक्तित्वके किस भागको कार्यरूप देना चाहते हो? उसका कौन-सा अंश अच्छा है—जो तुम्हारी मानसशक्तिका केन्द्र है वह या वह जो तुम्हारी प्रकृतिमें सबसे नीचे रहता है, उसका वासनामय भाग? अगर यह बात सच है कि व्यक्ति और समाज दोनोंकी प्रगतिका आधार अध्यात्मभावकी उत्तरोत्तर वृद्धि और जड़ प्रकृतिपर आत्माका पूर्ण प्रभुत्व है तो हमारा चुनाव क्या होगा, यह निश्चित है। पर हर हालमें हममें कर्म-शक्ति तो होनी ही चाहिए, और यह काम आसान नहीं है। इसके जवाबमें शायद तुम कहो कि मुझे चुनाव नहीं करना है—एकको अपनाने दूसरेको छोड़नेके पचड़ेमें नहीं पड़ना है। मुझे तो अपने जीवनको अखण्ड सत्ताके रूपमें ही उपलब्ध करना है। ठीक है, पर याद रक्खो, यह निश्चय खुद ही एक चुनाव है। क्योंकि यह मेल विग्रहके बाद बना है। अमर जर्मन कवि गेटेने कहा था 'मरकर जन्मो' और यह शब्द १६०० साल पहले कहे हुए हजरत ईसाके इन वचनकी प्रतिध्वनि मात्र है—'तथास्तु, मैं तुमसे कहता हूं कि धरतीपर गिरनेवाला गेहूंका दाना जबतक मरता नहीं वह अकेला रहता है। पर वह मरता है तो बहुतसे नए दाने पैदा कर देता है।'

श्री जब्रील सीलि लिखते हैं—"हम मर्द बनना चाहते हैं" यह कहना तो बहुत आसान है। पर यह अधिकार कर्त्तव्य, कठोर कर्त्तव्य बन जाता है जिसके पालनमें कमोबेश सभी विफल होते हैं। हम आजाद होना चाहते है, इसकी घोषणा हम धमकीके लहजेमें करते हैं। आजादीका मतलब अगर यह हो कि हम जो जीमें आये वह करें, अपनी पशु-प्रवृत्तियोंके गुलाम हो जायं, तो यह स्वाधीनता हमारे गर्वकी वस्तु न होनी चाहिए। हां, अगर हम सच्ची स्वाधीनताकी बात कह रहे हों तो हमें कभी समाप्त न होनेवाले संग्रामके लिए कमर कस लेनी चाहिए। हम अपनी एकता, भीतर-बाहरसे

बिलकुल एक होने और स्वाधीनताकी बातें करते हैं और गर्वके साथ मान लेते हैं कि हम ईश्वरके अमर पुत्र हैं। पर दुःख है कि इस आत्माको अगर हम पकड़ना चाहते हैं तो वह हमारी पकड़के बाहर हो जाती है। वह ऐसी असम्बद्ध वस्तुओंका समूह बन जाती है जो एक-दूसरेके अस्तित्वको अस्वीकार करती हैं, वह परस्परविरोधी इच्छाओंकी खींचातानीका भूला भूलती रहती है। वह जिस स्वाधीनताके उपभोगका दावा करती है वह गुलामीके सिवा और कुछ नहीं। पर वह उसे गुलामी लगती नहीं, इसलिए वह उसका विरोध नहीं करती।"

रूइसाँ कहते हैं—"संयम शांतिसे भरा हुआ गुण और असंयम दुर्जय दोषोंको निमंत्रण देनेवाला दुर्गुण। काम-वासनाका जगना यों तो हर समय कष्टका कारण होता है, पर युवावस्थामें तो वह एक मूलगत विकृति, इच्छा-शक्ति और इन्द्रियोंके सन्तुलनके सदाके लिए बिगड़ जानेका संकेत हो सकता है। किसी नवयुवकका किसी स्त्रीके साथ प्रथम सम्पर्क उसे जीवनका एक क्षणिक अनुभव-सा जान पड़ता है; पर वह नहीं जानता कि वह वास्तवमें अपने शारीरिक, मानसिक और नैतिक तीनों जीवनोंके साथ खिलवाड़ कर रहा है। वह नहीं जानता कि यह वासना अब प्रेतकी तरह उसका पीछा करेगी—घर, दफ्तर, जलसा, दावत हर जगह उसको परेशान करेगी; यह दूसरेके मनपर उसकी विजय उसके लिए इन्द्रियोंकी जन्मभरकी गुलामी बन जायगी। हम जानते हैं कि कितने खिलते जीवन, कितने 'होनहार बिरवे' इस झंझामें झुलस गये, जिसका आरम्भ उनके पहले नैतिक पतन, ब्रह्मचर्यके प्रथम भंगसे हुआ।"

एक यशस्वी कविकी ये पंक्तियां इस दार्शनिकके इस वचनकी प्रति-ध्वनि हैं—

"मनुष्यकी आत्मा एक गहरा बरतन है। उसमें पड़नेवाली बूंदें समल हों तो सारे समुद्रका पानी भी उस धब्बेको धो नहीं सकता।" (भावार्थ)

ग्लासगो विद्यापीठके शरीरशास्त्रके अध्यापक जान जी० एम० कंड्रिक की, जो अपने विषयके प्रख्यात पंडित हैं, यह सलाह भी उसकी वैसी ही प्रति-ध्वनि है—"उगती हुई कामवासनाकी तृप्ति अविहित नीति-दोष ही नहीं

है, शरीरकी भयानक क्षति भी है। इस वासनाके आदेशका तुमने एक बार पालन किया कि फिर उसका निरंकुश शासन तुम्हारे ऊपर स्थापित हुआ। अपनेको दोषी समझनेवाला तुम्हारा मन उसका हुक्म बजानेमें सुख भोगेगा और उसे और बेकहीं बना देगा। उसकी आज्ञाका प्रत्येक पालन आदतकी जंजीरमें एक नई कड़ी बनता जायगा। बहुतोंमें इस बेड़ीको तोड़नेका बल नहीं होता और वे अपने तन-मनका बुरी-तरह नाश कर डालते हैं। वे अपनी आदतके गुलाम हो जाते हैं; जो आमतौरसे मनकी किसी विकृतिके कारण नहीं बल्कि अज्ञानवश ही लग जाती है।"

इस मतकी पुष्टिमें श्री ब्यूरो डाक्टर एस्कांदे की यह उक्ति उद्धृत करते हैं—

"कामवासनाके बारेमें हम जोर देकर कहते हैं कि बुद्धि और संकल्पशक्ति उसे पूरी तरह बसमें रख सकती है। यहां वासना शब्दका ही व्यवहार उचित है, शारीरिक आवश्यकता या हाजतका नहीं, क्योंकि वह शरीरकी ऐसी मांग नहीं है जिसकी पूर्ति किये बिना हम जिंदा न रह सकें। सच तो यह है कि वह हाजत है ही नहीं। पर बहुतेरे उसे हाजत मानते हैं। इस वासना या इच्छाका जो अर्थ वे करते हैं वह उन्हें सहवासको जीवनकी अनिवार्य आवश्यकता माननेको मजबूर करता है। यहाँ हम कामवासनाकी उस तृप्तिका विचार नहीं कर रहे हैं जो प्रकृतिके नियमके सामने सिर झुका देनेका फल होती है, जो हम स्वभावके वश होकर करते हैं। हमारा मतलब तो उस अपनी इच्छासे किये जानेवाले कामसे है जो हमारे संकल्प या मनकी मौन सम्मतिसे किया जाता है, जिसे हम अक्सर पहलेसे सोचे हुए होते हैं और उसकी तैयारी भी कर रखते हैं।"

## ६ : आजीवन ब्रह्मचर्य

ब्याहके पहले और पीछे भी ब्रह्मचर्य-पालनकी आवश्यकतापर जोर देने और वह न हो सकनेवाला या किसी तरहकी हानि करनेवाला नहीं बल्कि सर्वथा साध्य और मन-देह दोनोंके लिए सोलहों आने हितकर कार्य है, इसकी सिद्धिमें सबूतोंका ढेर लगा देनेके बाद श्री ब्यूरोने एक अध्यायमें नैष्ठिक

या आजीवन ब्रह्मचर्यके मूल्य, महत्त्व और साध्यतापर विचार किया है। उसका पहला पैराग्राफ उद्धृत करने योग्य है—

"इन उद्धारकों, काम-वासनाकी गुलामीसे सच्चा छुटकारा दिलानेवाले इन वीरोंकी पहली श्रेणीमें उन युवा पुरुषों और स्त्रियोंके नाम लिये जाने चाहिए जो अपना जीवन किसी महत्कार्यमें लगानेके विचारसे आजीवन ब्रह्मचारी रहनेका निश्चय करते और गृहस्थ-जीवनके सुखोंका लाभ त्याग देते हैं। उनके निश्चयके कारण परिस्थितिके अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। कोई बूढ़े अशक्त माता-पिताकी सेवाके लिए यह व्रत लेता है, कोई अपने मातृ-पितृ-हीन भाई-बहनोंके लिए मां-बाप बनना चाहता है, किसीको अपने-आपको किसी कला-विज्ञानकी आराधनामें, दीन-दुखियोंकी सेवामें अथवा नीति-शिक्षा या धर्म-प्रचारके कार्यमें अपना सारा समय और शक्ति लगानेकी लगन है। इसी तरह इस इच्छाकृत त्यागका मूल्य भी न्यूनाधिक हो सकता है। सुशिक्षा और सदाचारके अभ्यासकी कृपासे कुछका मन ऐसा होता है कि विषय-भोग उसे एक तरहसे ललचा ही नहीं सकते। दूसरोंको अपनी वासनाओंपर विजय पानेमें अपनी पाशविक प्रवृत्तियोंके साथ घोर युद्ध करना पड़ता है, जिसकी कठोरताका पता केवल उन्हींको होता है। पर अन्तिम निश्चयका स्वरूप सबके लिए एक ही होता है। ये स्त्री और पुरुष यह सोचते हैं कि ब्याह न करना ही उनके लिए सबसे अच्छा रास्ता है, और चाहे अपनी अंतरात्माके, चाहे ईश्वरके सामने यह प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि हम आजन्म अविवाहित रहकर पवित्रताका जीवन बितायेंगे। विवाह हमारा कितना ही पक्का असंदिग्ध कर्त्तव्य क्यों न हो, हम यह देख सकते हैं कि विशेष परिस्थितियोंमें अविवाह-व्रत जायज होता है, क्योंकि वह एक ऊंचे, उदात्त उद्देश्यके लिए लिया जाता है। माइकेल एंजेलो[1]को जब ब्याहकी सलाह दी गई तो उसने जवाब दिया—'चित्र-कला ऐसी प्रेमिका है जो किसीकी सौत बनना नहीं सह सकती।'

---

[1]इटालियन चित्रकार और मूर्तिकार, जिसकी गणना दुनियाके प्रमुख कलाकारोंमें है। (१४७५-१५६४ ई०)।

श्री ब्यूरोने आजीवन ब्रह्मचर्यका व्रत लेनेवालोंके जितने वर्ग गिनाये हैं, अपने यूरोपीय मित्रोंमेंसे लगभग उन सभी प्रकारके लोगोंके अनुभवोंसे मैं इस शहादतकी पुष्टि कर सकता हूं। यह तो केवल हमारे हिंदुस्तानकी ही विशेषता है कि हमें बचपनसे ही अपने व्याहकी बातें सुननी पड़ती हैं। मां-बापके मनमें इसके सिवा न कोई दूसरा विचार है न हौसला कि उनके बच्चोंकी भावरें फिर जायें और वे उनके लिए काफी पैसा या जायदाद छोड़ जायें। पहली बात उन्हें समयसे पहले ही तन-मनसे बूढ़ा बना देती है, और दूसरी आलसी और अक्सर परोपजीवी—दूसरेकी मेहनतपर पलनेवाला होनेको प्रेरित करती है। ब्रह्मचर्य और स्वेच्छासे लिये हुए दारिद्र्य-व्रतकी कठिनाइयोंको हम बढ़ा-चढ़ाकर दिखाते और उन्हें साधारण-जनकी शक्तिके परेकी बात बताते हैं। कहते हैं कि केवल 'महात्मा' और योगी ही इन व्रतोंको निभा सकते हैं और हम संसारियोंमें उनके दर्शन कहां। वे यह भूल जाते हैं कि जिस समाजका साधारण जीवन गिरकर बहुत नीचे आ जाता है उसमें सच्चे महात्मा और योगीकी पहचान नहीं की जा सकती। बुराईकी चाल खरहेकी और भलाईकी कछुएकी होती है। इस न्यायसे पश्चिमकी विलासिता विद्युत्-वेगसे हमारे पास पहुंचती है और अपनी बहुरंगी छटासे हमारी आंखोंमें ऐसी चकाचौंध पैदा कर देती है कि हम जीवनकी सचाइयां देखनेमें असमर्थ हो जाते हैं। पश्चिमकी शान-शौकतकी जगमगाहट तारोंसे प्रतिक्षण, और पश्चिमके मालसे हमारे देशको पाटनेवाले जहाजोंसे प्रतिदिन हमारे पास पहुंच रही है। उसे देखकर हम संयम-सदाचारसे लज्जित-से होने लगे हैं, और अपनेसे लिये हुए दारिद्र्य-व्रतको अपराध मान लेनेको तैयार हो गए हैं। पर पश्चिमको हम हिंदुस्तानमें जिस रूपमें देखते हैं वह बिलकुल वही चीज नहीं है। दक्षिण अफ्रीकाके गोरे जैसे मुट्ठी-भर प्रवासी भारतीयोंको देखकर संपूर्ण भारतीयोंके रहन-सहन और चरित्रका अंदाजा लगाते हैं तो हमारे साथ अन्याय करते हैं; वैसे ही पश्चिमसे जो मानव (मनुष्य-रूप) और दूसरी तरहका माल रोज-ब-रोज हमारे यहां पहुंच रहा है उसे हम सारे पाश्चात्य जगत्को नापनेका पैमाना बना लें तो हम भी उसके साथ वैसा ही अन्याय करनेके अपराधी होंगे। पश्चिम में भी पवित्रता

और नीति-बलका एक नन्हा-सा पर कभी न सूखनेवाला सोता है और जिनकी आंखें परदेके पार जा सकती हैं, वे धोखा देनेवाले ऊपरी सतहके नीचे उसके दर्शन कर सकते हैं। यूरोपके रेगिस्तानमें हर जगह ऐसे नखलिस्तान, ऐसे हरे-भरे टुकड़े मौजूद हैं जहां जाकर जो चाहे जीवनके स्वच्छतम जलसे अपनी प्यास बुझा सकता है। सैकड़ों स्त्री और पुरुष बिना ढोल पीटे, बिना किसी शेखी-शानके पूरी नम्रताके साथ आजीवन ब्रह्मचर्य और गरीबी-की जिन्दगी बितानेका व्रत लेते हैं। बहुतेरे किसी प्रियजन या स्वदेशकी सेवाके लिए ही उसे ग्रहण करते हैं।

आध्यात्मिकताके बारेमें हम अक्सर इस तरहकी बातें किया करते हैं जैसे साधारण व्यावहारिक जीवनसे उसका कुछ लगाव ही न हो और वह हिमालयके वनोंमें बसने या उसकी किसी अगम्य गुफामें समाधि लगानेवाले योगियोंके लिए ही सुरक्षित हो। जिस आध्यात्मिक साधनाका हमारी रोजकी जिंदगीसे लगाव न हो, जिसका उसपर कुछ असर न पड़ता हो, वह महज हवाई चीज है। जिन युवकों और युवतियोंके लिए 'यंग इंडिया'में हर हफ्ते लिखा जाता है उन्हें जान लेना चाहिए कि अगर उन्हें अपने आस-पासके वायु-मंडलको शुद्ध और अपनी कमजोरीको दूर करना हो तो ब्रह्म-चर्यका पालन करना उनका कर्त्तव्य है और वह यह भी जान लें कि वह उतना कठिन नहीं है जितना उन्हें बताया गया है।

श्री ब्यूरोकी राय थोड़ी और सुन लीजिए—"समाज-शास्त्र हमारी जीवन-प्रणालीके विकासको ज्यों-ज्यों समझता जा रहा है त्यों-त्यों आजीवन ब्रह्मचर्यसे इंद्रिय-संयमके महान् कार्यमें मिलनेवाली सहायताके मूल्यका उसे अधिकाधिक ज्ञान होता जाता है।" विवाह अगर समाजके बहुत बड़े भागके लिए जीवनकी स्वाभाविक स्थिति है तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि सभी व्याह कर सकते हैं या सबको करना ही चाहिए। जिन असाधारण जीवन-व्यवसायोंकी बात हमने अभी-अभी कही है उनको अलग रखिए तो भी अविवाहित रहनेवालोंके कम-से-कम तीन वर्ग तो ऐसे हैं जिन्हें व्याह न करनेके लिए कोई दोष नहीं दे सकता—(१) जो लोग—स्त्री-पुरुष—दोनों—अपने पेशेकी बाधा या पैसेकी कमीके कारण व्याहको आगेके लिए

टाल रखना जरूरी समझते हैं। (२) जो लोग अपने मनका वर-वधू न पा सकनेके कारण न चाहते हुए भी अविवाहित रहनेको मजबूर हैं। (३) जिन लोगोंमें कोई ऐसा शारीरिक दोष या रोग होता है जिसके बच्चोंको भी होनेका डर हो, और फलतः जिन्हें अविवाहित रहना ही चाहिए बल्कि उसका खयाल भी दिलसे निकाल देना चाहिए।

इन लोगोंका यह त्याग उनका अपना सुख और समाजका हित दोनोंकी दृष्टिसे आवश्यक है। क्या यह देखकर वह कम क्लेशकर और प्रसन्नता-जनक न हो जायगा कि ऐसे लोगोंने भी, जो तन-मनसे पूर्ण स्वस्थ सशक्त हैं और जिनके पास पैसा भी काफी या काफीसे ज्यादा है, आजीवन ब्रह्मचर्य-धारणका व्रत ले लिया है। ये अपनी इच्छा और पसंदसे अविवाहित रहने-वाले, जिन्होंने अपना जीवन भगवान्, भगवत-भजन और आत्माकी साधना-को समर्पित करनेका संकल्प किया है, कहते हैं कि ब्रह्मचारीका जीवन हमारी निगाहमें जीवनकी हीन नहीं बल्कि अधिक ऊंची अवस्था है, जिसमें मनुष्य अपनी पशु-प्रवृति या सहज प्रेरणापर संकल्पके पूर्ण प्रभुत्वकी घोषणा करता है।

वे और लिखते हैं—"उन नवयुवकों और नवयुवतियोंको, जो अभी ब्याहकी उम्रको नहीं पहुंचे हैं, आजीवन ब्रह्मचर्य यह दिखाता है कि अपनी जवानीको पवित्रतापूर्वक बिता देना उनके बूतेके बाहरकी बात नहीं है; विवाहितोंको वह इसकी याद दिलाता है कि उनको दाम्पत्य जीवनके नियमोंके अधीन होना चाहिए, और नैतिक उदारता या एक-दूसरेके प्रति सच्चे रहनेके धर्मके आदेशोंकी अवहेलना कर किसी स्वार्थ-भावनाकी तृप्तिका यत्न, वह कितनी ही न्याय-संगत क्यों न हो, कदापि न करना चाहिए।"

फोस्टर लिखता है—"ब्रह्मचर्यका व्रत ब्याहका दरजा गिराता नहीं उलटे वह दाम्पत्य सम्बन्धकी पवित्रताका सबसे बड़ा सहारा है, क्योंकि अपनी प्रकृति या पशु-वृत्तिकी अधीनतासे मनुष्यकी मुक्तिकी वह ठोस शक्ल है। वासनाओं और विकारोंके हमलेके सामने वह कवचका काम करता है। वह ब्याहकी भी इस अर्थमें रक्षा करता है कि विवाहित स्त्री-पुरुषोंको वह यह माननेसे रोकता है कि पति-पत्नीके रूपमें हम

दुर्ज्ञेय प्राकृतिक प्रेरणाओंके गुलाम नहीं हैं, बल्कि हम स्वाधीन मनुष्यकी तरह उनसे लोहा लें और उनपर विजय प्राप्त कर सकते हैं। जो लोग आजीवन ब्रह्मचर्यको अस्वाभाविक या अनहोनी बात बताकर उसकी खिल्ली उड़ाते हैं वे जानते नहीं कि वे वास्तवमें क्या कर रहे हैं। वह यह नहीं देख पाते कि जो विचार-धारा उन्हें ब्रह्मचर्यका मजाक उड़ानेको प्रेरित कर रही है वह उन्हें व्यभिचार और बहुपत्नीत्व या बहुपतित्वके गढ़ेमें गिराकर रहेगी। प्रकृतिके आदेशका पालन अगर अनिवार्य है, उसकी उपेक्षा मनुष्यके बूतेके बाहरकी बात है, तो विवाहित स्त्री-पुरुषोंसे सदाचारयुक्त जीवनकी आशा कैसे रखी जा सकती है? वे यह भी भूल जाते हैं कि वैसे ब्याहोंकी संख्या कितनी बड़ी होती है जिनमें पति-पत्नीमेंसे किसी एकको दूसरेके रोग या दूसरे प्रकारकी असमर्थताके कारण महीनों, बरसों या आजीवन सच्चे ब्रह्मचर्यका पालन करना पड़ता है। अकेले एक इसी कारणसे सच्चे एक-पत्नी-व्रत या एक-पति-व्रतको हम ब्रह्मचर्यके बराबर ही दर्जा देते हैं।"

## ७ : विवाह धार्मिक संस्कार है

आजीवन ब्रह्मचर्यके अध्यायके बाद कई अध्यायोंमें विवाहके धर्मरूप और अविच्छेद्य होनेपर विचार किया गया है। श्री ब्यूरो यद्यपि नैष्ठिक ब्रह्मचर्यको सर्वश्रेष्ठ जीवन मानते हैं; पर साधारण जनके लिए उसका पालन शक्य नहीं, अतः ऐसे लोगोंके लिए विवाहको धर्मरूप मानना होगा। उन्होंने दिखाया है कि ब्याहका उद्देश्य और मर्यादा ठीक तौरसे समझ ली जाय तो गर्भ-निरोधके साधनोंका समर्थन किया ही नहीं जा सकता। आज जो समाजमें सर्वत्र नैतिक अराजकताका राज दिखाई दे रहा है वह दूषित नीति-शिक्षाकी ही देन है। ब्याहका मजाक उड़ानेवाले 'प्रगतिशील' लेखकोंके विचारोंकी समीक्षा करनेके बाद वह लिखते हैं—"इन नीति-शिक्षक बननेवालों और लेखकोंमें बहुतेरे नीति-ज्ञानसे बिलकुल कोरे और कुछ साहित्य-सेवाकी सच्ची भावनासे भी रहित हैं। इसे आनेवाली पीढ़ियोंका सौभाग्य समझना चाहिए कि इनकी यह राय हमारे समयके सच्चे मानस-शास्त्रियों

और समाज-शास्त्रियोंका मत नहीं है। अखबार, कहानी, उपन्यास और नाटक-सिनेमाकी शोर-शराबे वाली दुनिया और उस जगत्‌का, जहां विचारोंका उत्पादन और हमारे मानस और सामाजिक जीवनके गूढ़ तत्त्वोंका सूक्ष्म अध्ययन होता है, बिलगाव जितना पक्का और पूरा यहां दिखाई देता है उतना और कहीं नहीं है।"

श्री ब्यूरो स्वच्छन्द प्रेमकी दलीलको अस्वीकार करते हैं। मोदेस्ताँकी तरह वह भी मानते हैं कि "विवाह स्त्री और पुरुषका मिलकर एक हो जाना, सारी जिन्दगीका साथ, और दिव्य तथा मानव न्याय्य अधिकारोंकी साझेदारी है। वह 'महज कानूनी इकरार' नहीं बल्कि एक 'संस्कार', एक धार्मिक कर्त्तव्य है। उसने "गोरिल्लाको सीधा खड़ा होना सिखाया है—वनमानसको मनुष्य बनाया है।" यह सोचना भारी भ्रम है कि विधिवत् विवाहित स्त्री-पुरुषके लिए सबकुछ जायज है। और पति-पत्नी सन्तानोत्पादन-विषयक नैतिक संयमका पालन करते हों तो भी उनका मैथुनके अपनेको रुचनेवाले अन्य उपायोंको अपनाना नाजायज है। यह रोक खुद उनके हितके लिए भी उतनी ही आवश्यक है जितनी समाजके हितके लिए, जिसका पोषण और वर्धन ही उनके पति-पत्नी बननेका उद्देश्य होना चाहिए। उनका कहना है कि व्याह काम-वासनाको जिस कड़े बंधनमें बांधता है उसको व्यर्थ करनेके जो नित नये रास्ते निकल रहे हैं वे शुद्ध प्रेमके लिए भारी खतरा हैं। इस खतरेको दूर करनेका उपाय केवल यही है कि हम कामवासनाकी तृप्ति उस हदके अंदर ही रहकर करनेकी सावधानी रखें, जो खुद व्याहके उद्देश्यने ही बांध दी है।

सन्त फ्रांसिस कहते हैं—"उग्र औषधका व्यवहार हमेशा खतरनाक होता है, क्योंकि अगर वह जरूरतसे ज्यादा खा ली गई या ठीक तौरसे न बनी तो उससे भारी अपकार होता है। व्याह कामुकताकी दवा बताया जाता है और निस्सन्देह वह उसकी बहुत बढ़िया दवा है; पर साथ ही बहुत तेज काम करनेवाली दवा है, इसलिए सम्हालकर काममें न लाई गई तो बहुत खतरनाक भी होती है।"

श्री ब्यूरो इस मतका खण्डन करते हैं कि व्यक्तिको इसकी स्वतन्त्रता

है कि जब चाहे विवाह-बन्धनमें बंधे या उसे तोड़ फेंके, या उसकी जिम्मेदारियां न उठाते हुए मनमाना विषय-सुख भोगे। वह एक-पत्नी-व्रतपर जोर देते हैं और कहते हैं—

"यह कहना गलत है कि व्यक्ति व्याह करने या उसकी स्वार्थबुद्धि कहे तो अविवाहित रहनेको स्वतन्त्र है। यह बात तो और भी गलत है कि यथाविधि-विवाहित स्त्री-पुरुष, आपसकी रजामन्दीसे, जब चाहे अपना विवाह-बंधन तोड़ सकते हैं। एक-दूसरेको चुनते समय वे स्वतन्त्र थे और उनपर फ़र्ज है कि पूरी जानकारी और अच्छी तरह सोच-विचार कर लेनेके बाद ही यह चुनाव करें, तथा उसी आदमीको अपना जीवन-संगी बनायें जिसके विषयमें उन्हें विश्वास हो कि जिस नये जीवनमें वे प्रवेश करने जा रहे हैं उसकी जिम्मेदारियोंका बोझ वे उसके साथ उठा सकेंगे। पर ज्यों ही संस्कार और व्यवहार-रूपमें विवाह सम्पन्न हुआ, पति-पत्नी शारीरिक अर्थमें पति-पत्नी बने कि उनका काम उन दो आदमियोंकी बीचकी ही बात नहीं रह जाता, उसका असर सब ओर बहुत दूर-दूर तक पड़ने लगता है, और उससे ऐसे परिणाम होने लगते हैं जिनका पहलेसे अनुमान करना कठिन है। हो सकता है कि ये नतीजे इस अराजक व्यक्तिवादके युगमें खुद पति-पत्नीके ध्यानमें न आयें; पर ज्यों ही गार्हस्थ्य-जीवनकी स्थिरताको धक्का लगा, ज्यों ही व्याह एकनिष्ठ दाम्पत्य जीवनके हितकर संयमके बदले चंचल काम-वासनाकी तृप्तिका साधन बना, त्यों ही सारे समाजको जो घोर कष्ट मिलने लगता है वह उन परिणामोंके महत्त्वका यथेष्ट प्रमाण है। जो आदमी इन व्यापक परिणामों और इस सूक्ष्म सम्बन्ध-जालको समझता है उसके लिए इस ज्ञानका कुछ अधिक महत्त्व नहीं कि चूंकि मनुष्यके बनाये सारे धर्म-विधान विकासके विश्व-व्यापी नियमके अधीन हैं इसलिए औरोंकी तरह विवाह-व्यवस्थामें भी आवश्यक परिवर्तन होना ही चाहिए। कारण, यह कि यह बात शंका, सन्देहसे परे है कि इस दिशामें हमारा प्रगतिका रूप केवल यही हो सकता है कि व्याहका बन्धन और कड़ा हो जाय। आज विवाहके जन्मभरका बन्धन होने, कभी तोड़े न जा सकनेपर जो हमले किये जा रहे हैं और पति-पत्नीको आपसकी रजामन्दीसे चाहे जब तलाक देनेका

अधिकार मिलनेकी मांगकी जा रही है उससे इस बन्धनका समाजके हितके लिए आवश्यक होना और अधिक स्पष्ट हो जायगा। और ज्यों-ज्यों दिन बीतेंगे यह स्पष्ट होता जायगा कि यह नियम जो सदियों तक, जब समाज उसके सामाजिक मूल्यको पहचान न सकता था, धर्मका एक अनुशासन-मात्र बना रहा, व्यक्तिके लिए भी उतना ही हितकर है जितना समाजके लिए।

"विवाह-बन्धनके अटूट होनेका नियम हमारा शृंगार, बड़प्पनका दिखावामात्र, नहीं है, वह वैयक्तिक और सामाजिक जीवनके सबसे नाजुक पुरजोंके साथ जुड़ा हुआ है। और चूंकि लोग क्रम-विकासकी बातें किया करते हैं, उन्हें यह सोचना चाहिए कि मानव-जातिकी यह अनन्त प्रगति, जिसे सभी इष्ट मानते हैं, किस बातपर अवलंबित है।

"फोर्स्टर लिखता है—अपनी जिम्मेदारियोंका खयाल बढ़ना, व्यक्तिको अपनेसे नियम-बंधनमें बंधनेकी शिक्षा मिलना, धैर्य और उदारताकी वृद्धि, स्वार्थ-भावनाका अंकुशमें रहना, क्षणिक विकारों-वासनाओंके उपद्रवसे रागात्मक जीवनकी रक्षा होना—ये सभी ऐसी बातें हैं जिन्हें हम उच्च सामाजिक संस्कृतिके लिए सदा अनिवार्य और इस कारण आर्थिक परिस्थितिमें भारी उलट-फेर होनेसे होनेवाली गड़बड़ोंका असर उनपर न पड़ने देना अपना कर्तव्य मान सकते हैं। सच तो यह है कि आर्थिक प्रगति समाजकी सामान्य प्रगतिकी अनुगामिनी होती है, इसलिए कि आर्थिक सुरक्षा और सफलता अन्तमें हमारे सामाजिक सहयोगकी सचाई पर ही अवलंबित होती है। जो आर्थिक परिवर्तन इन बुनियादी शर्तोंकी उपेक्षा करता है वह अपनी जड़ अपने ही हाथों काट देता है। अतः अगर हमें काम-सम्बन्धकी विभिन्न रीतियोंके गुण-दोषका नैतिक और सामाजिक दोनों दृष्टियोंसे विचार करना है, तो हमें यह देखना होगा कि उसकी कौन-सी रीति, इस प्रकार सम्पूर्ण सामाजिक जीवनके पोषण और दृढ़ीकरणके लिए सर्वोत्तम है। कौन जीवनकी भिन्न-भिन्न मंजिलोंमें व्यक्तिके अन्दर अपने दायित्वका अधिक-से-अधिक ज्ञान और आत्म-त्यागका भाव उत्पन्न कर सकता है, उसकी असंयत स्वार्थ-परता और चंचल भोग-वासनापर कड़ा-से-कड़ा अंकुश रख सकता है? इन प्रश्नोंका उत्तर ही इस विचारमें निर्णायक होगा।

प्रश्नपर इस दृष्टिसे विचार किया जाय तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि एकनिष्ठ विवाह, एक ही स्त्रीको पत्नी और एक ही पुरुषको पति-रूपमें स्वीकार करनेका नियम हर अधिक उन्नत सभ्यताका स्थायी अंग होना ही चाहिए, क्योंकि समाजके हित और व्यक्तिको संयमकी शिक्षा देनेकी दृष्टिसे वह बहुत ही मूल्यवान् है। सच्ची प्रगति विवाह-बंधनकी गांठको ढीली करनेके बजाय और कड़ी कर देगी।...कुटुम्ब मनुष्यके अपने-आपमें सामाजिक जीवनकी योग्यता उत्पन्न करनेके सारे प्रयत्नका, अर्थात् जिम्मेदारी, सहानुभूति, मनोनिग्रह, एक-दूसरेके प्रति सहिष्णुता रखने और एक-दूसरेको शिक्षा देनेकी सारी तैयारीका केन्द्र है। वह इस आसनपर इसलिए विराज रहा है कि वह हमारे जीवनमें सदा बना रहता है, उसके साथ हमारा सम्बन्ध अविच्छेद्य है, अटूट है और इस स्थायित्वके कारण साधारण कुटुम्ब-जीवन और व्यवस्थाओंकी बनिस्बत अधिक गहराई वाला, अधिक स्थिर और मनुष्य-मनुष्यके परस्पर व्यवहारके लिए अधिक उपयुक्त है। एकनिष्ठ विवाहको हम मनुष्यके सारे सामाजिक जीवनका हृदयरूप कहें तो अनुचित न होगा।"

आगस्त कांतेके कथनानुसार—"हमारा चित्त इतना चंचल है कि हमारी छन-छनमें बदलनेवाली वासनाओंको अंकुशमें रखनेके लिए समाजको हस्तक्षेप करना ही होगा। नहीं तो वे मनुष्यके जीवनको निकम्मे और निरर्थक अनुभवोंकी शृंखला-मात्र बना देंगी।"

डाक्टर तूलूज लिखते हैं—"यह भ्रम बहुतेरे स्त्री-पुरुषोंके दाम्पत्य जीवनको दुःखमय बना देता है कि काम-वासना दुर्दम प्रवृत्ति है जिसकी तृप्ति जैसे भी बने करनी ही होगी।....पर मनुष्य-स्वभावकी विशेषता यही है और उसके विकासका प्रकट उद्देश्य भी यही मालूम होता है कि अपनी प्रकृतिकी मांगों, अपनी हाजतोंकी हुकूमतसे दिन-दिन अधिक स्वतन्त्र होता जाय। बच्चा अपनी स्थूल आवश्यकताओंको रोकना, दबाना सीखता है, वयःप्राप्त स्त्री-पुरुष अपने मनोविकारोंपर विजय प्राप्त करना। सुशिक्षाकी यह योजना कोरी कल्पनाकी उड़ान या व्यावहारिक जीवनके बाहरकी बात नहीं है। हमारी प्रकृतिकी बनावट यही कहती है कि हम अपने संकल्प

या इच्छा-शक्तिके ही अधीन रहें—जो करना चाहें वही करें। जिसे हम 'मिजाज' या स्वभाव कहा करते हैं वह आम तौरसे महज हमारी कमजोरी होता है। जो आदमी सचमुच बलवान है वह जानता है कि कब और कैसे अपनी शक्तियोंसे काम लेना होता है।"

## ८ : उपसंहार

अब इस लेख-मालाको समाप्त करना चाहिए। श्री ब्यूरोने मालथस[१]के सिद्धान्तकी जो समीक्षा की है उसका अनुसरण हमारे लिए आवश्यक नहीं है। मालथसने इस सिद्धांतका प्रतिपादन कर अपने जमानेके लोगोंको चौंका दिया था कि दुनियाकी आबादी हदसे ज्यादा हो रही है और मानव-वंशको लुप्त होनेसे बचाना हो तो हमें जरूरतसे ज्यादा बच्चे पैदा करना बंद करना होगा। फिर भी उसने इंद्रिय-संयमका समर्थन किया था। पर उसके सिद्धांतके नए अनुयायी कहते हैं कि अपनी वासनाओंसे लड़ना बेकार बल्कि हानिकारक है। हमें ऐसे रासायनिक द्रव्यों और आलोंसे काम लेना चाहिए जिससे हम उनकी तृप्ति तो करते रहें पर उसके नतीजोंसे बच जायं। श्री ब्यूरो आवश्यकतासे अधिक बच्चे पैदा न करनेके सिद्धांतको स्वीकार करते हैं, पर वह कहते हैं कि यह काम इंद्रिय-संयमके सहारे किया जाय, और जैसा कि हम देख चुके हैं, दवाओं, यन्त्रों, आलोंके उपयोगका जोरोंसे विरोध करते हैं। इस समीक्षाके बाद उन्होंने श्रमिक वर्गों, मेहनत-मजदूरी करने-वालोंकी दशा और उनमें बच्चोंके जन्मके अनुपात पर विचार किया है और अन्तमें उन साधनोंकी समीक्षा की है जिनसे व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और मनुष्यताके नामपर आज जो भयानक अनीति फैल रही है उसकी रोक-थाम हो सकती है। उन्होंने लोकमतको ठीक रास्ता दिखाने और उसपर चलानेके लिए संघटित प्रयत्न होने और इसमें राज्यके दखल देने—कानूनसे सहायता लेनेकी भी सलाह दी है। पर अन्तमें यही कहा है कि जन-समाजमें धर्म-भावका जगना ही इस रोगका सच्चा इलाज है। नीति-नाशकी बाढ़

---

[१]टामस राबर्ट मालथस, ब्रिटिश अर्थ-शास्त्री, (१७६६-१८३४ ई०)

उनसे मैं यह कहनेका साहस कर सकता हूं कि भारतीय जनताके इस महा-समुद्रमें ऐसे स्त्री-पुरुष इने-गिने ही निकलेंगे, जो बल-वीर्य सम्पन्न होते हुए भी चाहते हैं कि हम सहवासका सुख तो लें पर बच्चोंका बोझ उठानेसे बच जायं। अपने उदाहरणोंका ढिंढोरा पीटकर उन्हें इस क्रियाकी आवश्यकता सिद्ध करनेका यत्न और उसकी वकालत न करनी चाहिए, जिसका व्यापक प्रचार इस देशमें हुआ तो यहां के युवक वर्गका सर्वनाश होना निश्चित है। अति कृत्रिम शिक्षा-प्रणालीने हमारे युवकोंको शरीर और मनके बलसे यों ही वंचित कर रखा है, हममेंसे बहुतेरे बचपनमें ब्याहे हुए मां-बापकी संतान हैं। स्वास्थ्य और शौचके नियमोंकी उपेक्षाने हमारे शरीरको घुन लगा दिया है। हमारी गलत, पोषक तत्त्वोंसे रहित और उत्तेजक मसालोंसे भरी खूराकने हमारी पाचन-शक्तिका दिवाला निकाल दिया है। अतः हमें गर्भ-निरोधके साधनोंसे काम लेनेकी शिक्षा और अपनी पशु-वृत्तिकी तृप्तिमें सहायताकी आवश्यकता नहीं है। बल्कि उस वासनाको वशमें करने और कुछ लोगोंको जिन्दगी-भरके लिए ब्रह्मचर्य-व्रत ले लेनेकी शिक्षा लगातार मिलते रहनेकी आवश्यकता है। उपदेश और उदाहरण दोनोंसे हमें यह शिक्षा मिलनी चाहिए कि ब्रह्मचर्य सर्वथा चलने लायक, और अगर हमें तन-मनसे अधमरा बनकर नहीं जीना है तो अत्यावश्यक व्रत है। यह बात पुकार-पुकारकर हमारे कानोंमें डाली जानी चाहिए कि अगर हमें बौनोंकी जाति नहीं बनना है तो जो प्राण-शक्ति हमारे पास बच रही है और जिसे हम नित्य नाश कर रहे हैं उसका संचय करना और उसे बढ़ानेका यत्न करना होगा। हमारी युवती विधवाओंको गुप्त व्यभिचारकी शिक्षाकी नहीं, बल्कि इस उपदेशकी आवश्यकता है कि साहसके साथ सामने आकर समाजसे पुनर्विवाहकी मांग करें, जिसका उन्हें भी उतना ही अधिकार है जितना विधुर युवकोंको। हमें ऐसा लोकमत बनाना है जिसमें अबोध, अवय-प्राप्त बच्चोंका ब्याह नामुमकिन हो जाय। हमारे विचार-संकल्पकी अस्थिरता, हमारा कड़ी मेहनत और लगकर काम करनेसे भागना, हमारे शरीरका कड़ी और लगातार मेहनतके अयोग्य होना, बड़ी शानसे शुरू किये गए हमारे कामोंका बैठ जाना, नई बात सोचनेकी शक्तिका अभाव यह सब हमारे यहां आम हो

रहा है, और इनका प्रधान कारण अत्यधिक वीर्य-नाश ही है। मैं आशा करता हूं कि नवयुवक अपने मनको यह भुलावा न देंगे कि बच्चे न जनमे तो संभोगसे कोई हानि नहीं होती, कोई कमजोरी नहीं आती। सच यह है कि गर्भ-स्थिति पर अस्वाभाविक रोक लगाकर किया जानेवाला संभोग उस संभोगसे कहीं अधिक शक्तिका क्षय करता है, जो उस कामकी जिम्मेदारी पूरी तरह समझते हुए किया जाय।

"मनः एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः"

हमारा मन यह मान ले कि काम-वासनाकी तृप्ति करनेमें कोई हानि और पाप नहीं है तो हम उसकी लगाम ढीली कर देना पसन्द करेंगे और फिर उसको रोकनेकी शक्ति ही हममें न रह जायगी। पर अगर हम अपने-आपको यह समझायें कि इस प्रकारका विषय-भोग हानिकर, पापमय और अनावश्यक है और उसकी इच्छा दबाई जा सकती है, तो हमें मालूम होगा कि अपने मन-इन्द्रियोंको काबूमें रखना सर्वथा शक्य बात है। नई सचाई और तथोक्त मानव स्वाधीनताके बहाने मदमत्त पश्चिमी स्वच्छन्द कामुकताकी जो कड़ी शराबके करावे हमारे सामने लाकर धर रहा है उससे हमें होशियार रहना चाहिए। उलटा अपने पुरखोंका प्राचीन ज्ञान अब हमारे लिए बेकार हो गया हो तो पश्चिमकी उस शांत-गम्भीर वाणीको ही सुनें जो वहांके ज्ञानीजनोंके बहुमूल्य अनुभवोंसे छनकर जब-तब हमतक पहुंच जाया करती है।

चार्ली[1] एंड्र्यूजने श्री विलियम लाफ्ट्स हेयरका एक ज्ञान-गर्भ लेख मेरे पास भेजा है जो 'ओपेन कोर्ट' नामक मासिक पत्रके मार्च, १९२६ के अंकमें प्रकाशित हुआ था। लेखका विषय 'जनन और पुनर्जनन' है और वह तर्क-युक्तियोंसे पूर्णपोषित शास्त्रीय लेख है। लेखकने दिखाया है कि सभी सप्राण पिण्डों, सभी प्राणियोंकी देहोंमें दो तरहकी क्रियाएं सदा होती रहती है—शरीरको बनानेके लिए भीतरी उत्पादन और वंश-रक्षाके लिए बाह्य उत्पादन। पहली

---

[1] स्वर्गीय श्री सी० एफ० एंड्रूज

क्रियाको वह पुनर्जनन (रीजेनरेशन) और पिछलीको जनन (जेनरेशन) कहता है। "पुनर्जननकी क्रिया—भीतरी उत्पादन व्यक्ति-जीवनका आधार है, इसलिए आत्यावश्यक और मुख्य कार्य है। जनन-क्रिया कोषोंके आधिक्यका परिणाम है, इसलिए गौण कार्य है।....जीवनका नियम है कि पहले पुनर्जननके लिए बीज-कोषोंका पोषण किया जाय, फिर जननके लिए। पोषणकी कमी हो तो पुनर्जननकी क्रिया पहले होगी और जननका काम बन्द रखा जायगा। इससे हम जान सकते हैं कि जनन क्रियाके विरामकी जड़ कहां है और वह कहांसे चलकर हमारे ब्रह्मचर्य और तपस्याके जीवन तक पहुंची है। आन्तरिक उत्पादनकी क्रिया कभी बन्द रह ही नहीं सकती, उसके बन्द रहनेका अर्थ मृत्यु होगा। यह सूत्र हमें बताता है कि "मृत्यु अपने स्वाभाविक रूपमें क्या चीज है।" पुनर्जनन क्रियाकी शास्त्रीय विवेचनाके बाद श्री हेयर कहते हैं—"सभ्य समाजमें स्त्री-पुरुषका संयोग अगली पीढ़ीको पैदा करनेकी आवश्यकतासे कहीं अधिक होता है। इससे आन्तरिक पुनर्जनन-शरीरके पोषणकी क्रियामें बाधा पड़ती है और इसका फल रोग, मृत्यु और दूसरी खराबियां होती हैं।"

जिस आदमीको हिन्दू दर्शनका थोड़ा भी परिचय होगा उसे श्री हेयरके निबन्धके इस पैराग्राफका भाव समझानेमें कठिनाई न होगी—

"पुनर्जनन यांत्रिक क्रिया—बेजान कलके पुरजोंका हिलना न है और न हो सकता है। वह तो जीव-सृष्टिमें कोषके प्रथम विभाजनकी तरह प्राण या जीवनका अस्तित्व बतानेवाला व्यापार है। अर्थात् वह कर्तामें बुद्धि और संकल्पकी शक्ति होनेकी सूचना देता है। प्राण-तत्त्वका विभाजन और बिलगाव—उसका विशिष्ट कार्योंकी योग्यता प्राप्त करना—शुद्ध यांत्रिक क्रिया है, यह बात तो सोची भी नहीं जा सकती। इसमें सन्देह नहीं कि जीवनकी ये मूलभूत क्रियाएं हमारी वर्तमान चेतनासे इतनी दूर जा पड़ी हैं कि कोई बुद्धिकृत या सहज संकल्प उनका नियमन करता है, यह नहीं जान पड़ता। पर क्षण भरके विचारसे ही यह बात स्पष्ट हो जायगी कि पूरी बाढ़को पहुंचे हुए मनुष्यका संकल्प जिस तरह उसकी बाह्य चेष्टाओं और क्रियाओंका संचालन, बुद्धिके निर्देशानुसार करता है, वैसे ही यह भी मानना

होगा कि आरंभमें होनेवाली शरीरके क्रमिक संघटनकी क्रियाएं भी, अपनी परिस्थितिकी सीमाओंके अंदर; एक प्रकारकी बुद्धिकी रहनुमाईमें काम करने-वाली एक प्रकारकी इच्छा-शक्ति या संकल्पके द्वारा परिचालित होती है। इस बुद्धिको मानस शास्त्रके पंडित अचेतन मन या अन्तर-चेतना कहने लगे हैं। यह हमारी व्यष्टि-सत्ता, हमारे आत्माका ही एक अंग है जो हमारे साधारण चिन्तनसे लगाव न रखते हुए भी अपने निजके कर्तव्योंके विषयमें अतिशय जागरूक और सावधान रहता है। हमारी बाह्य चेतना सुषुप्ति, बेहोशी आदिमें सो जाती है, पर यह कभी एक क्षणके लिए भी आंखें नहीं मूंदती।"

केवल वासना-तृप्तिके लिए किये जानेवाले संभोगसे हमारी सत्ताके अचेतन और अधिक स्थायी अंगकी जो लगभग अपूरणीय हानि हो रही है उसकी माप-तौल कौन कर सकता है? पुनर्जननका फल मरण है। "मैथुन पुरुषके लिए मूलतः क्षयकी क्रिया—मृत्युकी ओर प्रगति है, और प्रसव स्त्रीके लिए।" इसीलिए लेखकका कहना है कि "पूर्ण ब्रह्मचर्य या ब्रह्मचर्य-सदृश संयमके पालनका पुरस्कार बलवीर्य और आरोग्य होता है।" "बीजकोषोंको शरीर-पोषणके कार्यसे हटाकर सन्तानोत्पादन या केवल वासना-तृप्तिके लिए व्यय करना शरीरके अवयवोंको उस पूंजीसे वंचित कर देता है जिससे वे अपनी रोजकी छीजन पूरी कर सकते हैं। फलतः कुछ दिनोंमें वे अशक्त हो जाते हैं।" "ये शारीरिक तथ्य ही व्यक्तिके काम-संयमका आधार हैं, जो हमें वासनाके पूर्ण दमनकी नहीं तो उसकी संयत तृप्तिकी शिक्षा अवश्य देते हैं—कम-से-कम इतना तो बता ही देते हैं कि संयमका मूल कहां है।

लेखक यंत्रों और दवाओंकी सहायतासे गर्भ-निरोधका विरोधी है यह तो हम समझ ही सकते हैं। उसका कहना है—"इससे अपनी वासनाको दबानेके लिए कोई बुद्धिसंगत हेतु नहीं रह जाता, और यह पति-पत्नीके लिए जबतक भोगेच्छा निर्बल नहीं हो जाती या बुढ़ापा नहीं आ जाता, तबतक वीर्य-नाश करते रहनेका दरवाजा खोल देता है। इसके सिवा इसका बुरा असर वैवाहिक संबंधके बाहर भी पड़े बिना नहीं रहता। यह

अनियमित, अवैध और अफलजनक संतानरहित सम्बन्धका रास्ता खोल देता है, जो आधुनिक उद्योग-नीति, समाजशास्त्र और राजनीतिकी दृष्टिसे खतरेसे भरी हुई बात है। पर यहां मैं उन हानियोंकी चर्चा नहीं कर सकता। इतना ही कहना काफी होगा कि गर्भ-निरोधके साधनोंके उपभोगसे विवाहित या अविवाहित दोनों दशाओंमें काम-वासनाकी असंयत तृप्तिका सुभीता हो जाता है और शरीर-शास्त्रकी जो दलीलें मैंने ऊपर दी हैं वे ठीक हों तो इससे व्यक्ति और समाज दोनोंकी हानि होनी ही चाहिए।

श्री ब्यूरोने जिस वाक्यसे अपनी पुस्तक समाप्त की है, वह इस योग्य है कि हर एक भारतीय युवक उसे अपने हृदयकी पटियापर लिख ले—

"भविष्य उन्हीं राष्ट्रोंका है जो सदाचारी हैं।"

: २ :

# एकान्तकी बात

ब्रह्मचर्य-पालनके विषयमें तरह-तरहके प्रश्न करनेवाले इतने पत्र मेरे पास आते हैं और इस विषयमें मेरे विचार इतने पक्के हैं कि अपने अनुभवके फल पाठकोंके सामने न रखना उचित न होगा, खासकर राष्ट्रके जीवनकी इस अति नाजुक घड़ीमें ।

ब्रह्मचर्य संस्कृत भाषाका शब्द है जिसका अर्थ उसके अंग्रेजी पर्याय 'सेलिबेसी' (अविवाह-व्रत)से अधिक व्यापक है । ब्रह्मचर्यके मानी हैं सम्पूर्ण इन्द्रियोंपर पूर्ण अधिकार । पूर्ण ब्रह्मचारीके लिए कुछ भी अशक्य नहीं । पर यह आदर्श स्थिति है जिस तक विरले ही पहुँच पाते हैं । इसे ज्यामितिकी रेखा कह सकते हैं, जिसका अस्तित्व केवल कल्पनामें होता है, दृश्य रूपमें कभी खींची ही नहीं जा सकती । फिर भी रेखा-गणितकी यह एक महत्त्वपूर्ण परिभाषा है जिससे बड़े-बड़े नतीजे निकलते हैं । इसी तरह, हो सकता है, पूर्ण ब्रह्मचारी भी केवल कल्पना-जगत्में ही मिल सकता हो । फिर भी अगर हम इस आदर्शको सदा अपने मानस-नेत्रोंके सामने न रखें तो हमारी दशा बिना पतवारकी नाव-जैसी हो जायगी । ज्यों-ज्यों हम इस काल्पनिक स्थितिके पास पहुंचेंगे, त्यों-त्यों अधिकाधिक पूर्णता प्राप्त करते जायंगे ।

पर तत्काल मैं वीर्य-रक्षाके संकुचित अर्थमें ही ब्रह्मचर्यपर विचार करना चाहता हूं । मैं मानता हूं कि आध्यात्मिक पूर्णताकी प्राप्तिके लिए मन, वाणी और कर्म सबमें पूर्ण संयमका पालन आवश्यक है और जिस राष्ट्रमें ऐसे स्त्री-पुरुष न हों वह रंक है; पर तत्काल मेरा प्रयोजन इतना ही है कि हमारा राष्ट्र इस समय विकासकी जिस मंजिलसे गुजर रहा है उसमें ब्रह्मचर्यको एक अल्पकालिक आवश्यकता सिद्ध करूँ ।

रोग, अकाल और कंगालीमें हमारा हिस्सा औरोंसे बड़ा है। हमारे लाखों भाइयोंको तो रोज भूखे पेट ही सोना पड़ता है। गुलामीकी चक्कीमें हम ऐसे कौशलके साथ पीसे जा रहे हैं कि बहुतोंको तो पिसनेका पता तक नहीं चलता। यद्यपि आर्थिक, मानसिक और नैतिक शोषणका तिहरा क्षय हमें खा रहा है, फिर भी हम यही मानते हैं कि हम आजादीकी राहमें बराबर आगे बढ़ते जा रहे हैं। दिन-दिन बढ़नेवाला फौजी खर्च, लंकाशायरके कारखानों और दूसरे ब्रिटिश-व्यवसायोंके लाभकी दृष्टिसे निर्धारित कर-नीति और राज्यके विविध-विभागोंके संचालनमें बरती जानेवाली शाहाना फिजूलखर्ची—यह सब भारतका ऐसा भार बन रहा है जो उसकी गरीबी बढ़ाता और रोगोंसे लड़नेकी शक्ति घटाता जा रहा है। श्रीगोखलेके शब्दोंमें शासनके इस ढंगने राष्ट्रकी बाढ़ इतनी मार दी है कि हमारे बड़े-से-बड़े आदमी भी कमर सीधी रखकर खड़े नहीं हो सकते। अमृतसरमें तो हिन्दुस्तानियोंको पेटके बल रेंगना भी पड़ा। पंजाबका जान-बूझकर किया हुआ अपमान—और हिन्दुस्तानके मुसलमानोंको दिये हुए वचनको उद्धतपनके साथ तोड़नेके लिए माफी मांगनेसे इन्कार हमारे नैतिक दारिद्र्यकी ताजा मिसालें हैं। ये घटनाएं सीधे हमारी आत्मापर आघात कर रही हैं। इन दोनों अन्यायोंको हमने सह लिया तो राष्ट्रको नपुंसक बना देनेकी क्रियाकी पूर्ति हो जायगी।

क्या हम लोगोंके लिए, जो स्थितिको जानते, समझते हैं, ऐसे चरित्र-नाशक वायु-मण्डलमें बच्चे पैदा करना मुनासिब है? जबतक हम दीन-असहाय, रोगी और क्षुधा-पीड़ित हैं तबतक हम बच्चे पैदा करके केवल गुलामों और मरियलोंकी ही तादाद बढ़ायेंगे। भारत जबतक स्वाधीन और ऐसा राष्ट्र नहीं हो जाता, जो साधारण ही नहीं अकालके समय भी अपना पेट भर लेनेमें समर्थ हो और जो मलेरिया, हैजा, इनफ्लुएंजा और दूसरी अनेक बीमारियोंसे अपना बचाव करना जानता हो, तबतक हमें बच्चे पैदा करनेका हक नहीं है। इस देशमें किसीके घर बच्चे पैदा होनेकी खबर सुनकर मेरे दिलमें जो दुःख होता है उसे मैं पाठकोंसे छिपा नहीं सकता। स्वेच्छाकृत संयमके द्वारा सन्तानोत्पादन रोकनेकी संभावनापर मैंने बरसों

विचार किया है और इस संभावनासे मुझे सन्तोष हुआ है। हिन्दुस्तान आज अपनी मौजूदा आवादीका वोझ उठानेके काविल भी नहीं है, इसलिए नहीं कि उसकी आवादी वहुत ज्यादा वढ़ गई है वल्कि इसलिए कि उसकी गरदन ऐसे विदेशी राजके जुएके नीचे है जिसने उसके जीवन-रसको अधिकाधिक चूसते जाना ही अपना धर्म मान रखा है।

सन्तानोत्पादन किस तरह रोका जा सकता है? यह होगा यूरोपमें काममें लाये जानेवाले नीति-नाशक वनावटी प्रतिवंधोंसे नहीं, वल्कि नियमवद्ध जीवन और मन-इन्द्रियोंको कावूमें रखनेके अभ्याससे। मां-वापका फर्ज़ है कि अपने वच्चोंको ब्रह्मचर्य-पालनकी शिक्षा दें। हिन्दू शास्त्रोंके अनुसार लड़केका व्याह कम-से-कम २५ सालकी उम्रमें होना चाहिए। अपने देशकी माताओंसे अगर हम यह मनवा सकें कि वालक-वालिकाओंको विवाहित जीवनके लिए तैयार करना पाप है तो इस देशमें होनेवाले आवे व्याह अपने-आप वंद हो जायंगे। हमें इस वहमको भी दिलसे निकाल देना चाहिए कि इस देशकी गरम जलवायुके कारण लड़कियां जल्दी ऋतुमती हो जाती हैं। इससे वड़ा अंधविश्वास मैंने दूसरा नहीं देखा। मैं यह कहनेको तैयार हूं कि जल्दी या देरसे जवान होनेपर जलवायुका कुछ भी असर नहीं होता। जो चीज हमारे वालक-वालिकाओंको वक्तसे पहले जवान वना देती है वह है हमारे कौटुम्बिक जीवनके आस-पास रहनेवाला मानसिक और नैतिक वातावरण। माताएं और घरकी दूसरी स्त्रियां अवोध वच्चोंको यह सिखा देना अपना धर्म समझती हैं कि इतने वरसके होनेपर तुम दूल्हा वनोगे या तुम्हें ससुराल जाना होगा। वे निरे वच्चे, वल्कि मांकी गोदमें, होते हैं तभी उनकी सगाई कर दी जाती है। उन्हें जो खाना खिलाया और कपड़े पहनाये जाते हैं वे भी वासनाओंको जगानेमें सहायक होते हैं। हम उन्हें गुड़ियोंकी तरह सजाते हैं, उनके नहीं वल्कि अपने सुखके लिए और अपना वड़प्पन दिखानेके लिए। मैं वीसों लड़कोंका पालन-पोषण कर चुका हूं। उन्हें जो कपड़े भी दिये गए उन्होंने विना किसी कठिनाईके पहन लिये और उन्हींसे खुश रहे। हम उन्हें हर तरहकी गर्म और उत्तेजना पैदा करनेवाली चीजें भी खिलाते रहते हैं। हमारा अंधा प्रेम यह नहीं देखता

कि वे क्या और कितना पचा सकते हैं। इन सबका परिणाम निश्चय ही यह होता है कि हम समयसे पहले जवान होते, समयसे पहले माँ-बाप बनते और समयसे पहले ही परलोकको पयान कर देते हैं। माँ-बाप अपने व्यवहारसे जो वस्तु-पाठ बच्चोंके सामने रखते हैं उसे वे आसानीसे सीख लेते हैं। अपनी वासनाओंकी लगाम ढीली छोड़कर वे अपने बच्चोंके सामने संयम-रहित भोगका नमूना बनाते हैं। हर नये बच्चेके जन्मपर उछाव-बधाव होता है। अचरजकी बात तो यह है कि ऐसे वातावरणमें रहकर भी हम और अधिक असंयमी नहीं हुए।

मुझे इस बातमें लेश-मात्र भी शंका नहीं कि हमारे देशके स्त्री-पुरुष सभी देशका भला चाहते हैं और यह चाहते हैं कि हिन्दुस्तान सबल, सुन्दर और सुगठित शरीरवाले स्त्री-पुरुषोंका राष्ट्र बने, तो उन्हें पूर्ण संयमका पालन करना और फिलहाल तो बच्चे पैदा करना बंद कर ही देना चाहिए। मैं नवविवाहित पति-पत्नियोंको भी यही सलाह देता हूं। कोई काम करके छोड़ देनेसे उसे बिलकुल ही न करना आसान होता है। वैसे ही जैसे एक पियक्कड़ या थोड़ी शराब पीनेवालेके लिए उसका त्याग कठिन और जिसने कभी उसे मुंह न लगाया हो उसके लिए आजन्म उससे दूर रहना आसान होता है। गिरकर उठनेसे सीधा खड़ा रहना हजार दरजे आसान होता है। यह कहना गलत है कि संयमके उपदेशके अधिकारी केवल वही हैं जिनकी वासनाएं परितृप्त हो चुकी हैं। वैसे ही जिसका तन-मन शिथिल हो गया है उसको भोग-त्यागका उपदेश देनेका कोई अर्थ नहीं। मेरा कहना तो यह है कि चाहे हम जवान हों या बूढ़े, भोगसे अघा चुके हों या न अघाये हों, तत्काल हमपर फर्ज है कि अपनी गुलामीके उत्तराधिकारी पैदा करना बंद कर दें।

देशके दम्पतियोंको मैं यह भी बता देना चाहता हूं कि वे साथीके हककी दलीलके भुलावेमें न पड़ें। रजामंदी भोगके लिए दरकार होती है, संयमके लिए नहीं। यह बिलकुल खुला सत्य है।

हम एक शक्तिशाली सरकारके साथ जीवन-मरणके संग्राममें संलग्न हैं। उसमें हमें अपना सारा शारीरिक, भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक

बल लगाना होगा। यह बल हमें तबतक मिल नहीं सकता जबतक कि हम उस चीजको बहुत किफायतसे न खर्च करें, जो हमारे लिए सबसे ज्यादा कीमती होनी चाहिए। हमारे व्यक्तिगत जीवनमें यह पवित्रता न आई तो हम सदा गुलामोंका राष्ट्र बने रहेंगे। हम यह सोचकर अपने-आपको धोखा न दें कि चूंकि अंग्रेजोंकी शासन-पद्धतिको हम पापमय मानते हैं इसलिए वैयक्तिक सद्गुण सदाचारमें भी हमें उनको अपनेसे हीन, तिरस्करणीय समझना चाहिए। चरित्रके मूलभूत सद्गुणोंको वे आध्यात्मिक साधनाका नाम देकर उनका ढिंढोरा नहीं पीटते; पर कम-से-कम शरीरसे तो वे उनका भरपूर पालन करते हैं। अपने देशके राजनीतिक कार्योंमें लगे हुए अंग्रेजोंमें जितने ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियां हैं उतने हमारे यहां नहीं हैं। ब्रह्मचर्य-व्रत लेनेवाली स्त्रियां तो हममें एक तरहसे हैं ही नहीं। थोड़ी-सी जोगिनें-वैरागिनें अवश्य हैं, पर देशके जीवनपर उनका कोई असर नहीं। यूरोपमें हजारों स्त्रियां एक साधारण सदाचारकी भांति ब्रह्मचर्यका जीवन बिताती हैं।

अब मैं पाठकोंके सामने थोड़ेसे सीधे-सादे नियम रखता हूं जो अकेले मेरे ही नहीं मेरे अनेक साथियोंके भी अनुभवके आधारपर बनाये गये हैं :

१. लड़के-लड़कियोंका पालन-पोषण सरल और प्राकृतिक ढंगसे तथा मनमें इस बातका पक्का विश्वास रखकर करना चाहिए कि वे निष्पाप हैं और सदा बने रह सकते हैं।

२. मिर्च-मसाले जैसी गरमी और उत्तेजना पैदा करनेवाले और मिठाइयां, तली, भुनी चीजों, जैसे पाचनमें भारी पड़नेवाले पदार्थोंसे परहेज करना चाहिए।

३. पति और पत्नीको अलग-अलग कमरोंमें रहना और एकान्तसे बचना चाहिए।

४. देह और मन दोनोंको सदा अच्छे, स्वास्थ्य-जनक कामों, विचारोंमें लगाये रखना चाहिए।

५. जल्दी सोने और जल्दी उठनेके नियमका कड़ाईके साथ पालन किया जाय।

६. हर तरहके गन्दे साहित्यसे परहेज किया जाय। मलिन विचारोंका इलाज पवित्र विचार हैं।

७. वासनाओंको जगानेवाले थियेटर, सिनेमा और नाच-तमाशोंसे बचना चाहिए।

८. स्वप्न-दोषसे घबरानेकी जरूरत नहीं; तन्दुरुस्त आदमीके लिए उसके बाद ठंडे जलसे नहा लेना इस रोगका अच्छे-से-अच्छा इलाज है। यह कहना गलत है कि कभी-कभी संभोग कर लेनेसे स्वप्नमें वीर्य-पात बंद हो जाता है।

९. सबसे बड़ी बात यह है कि पति-पत्नीके बीच भी ब्रह्मचर्यका पालन असाध्य या अति कठिन न माना जाय; उलटा संयमको जीवनकी साधारण और स्वाभाविक स्थिति मानना चाहिए।

१०. प्रतिदिन पवित्रताके लिए सच्चे दिलसे प्रभुसे प्रार्थना की जाय तो आदमी दिन-दिन अधिकाधिक पवित्र होता जायगा।

: ३ :

# ब्रह्मचर्य

इस विषयपर कुछ लिखना आसान नहीं है। पर इस विषयमें मेरा अपना अनुभव इतना विशाल है कि उसकी कुछ बूंदें पाठकोंके सामने रखनेकी इच्छा सदा बनी रहती है। मुझे मिली हुई कुछ चिट्ठियोंने इस इच्छाको और भी बढ़ा दिया है।

एक भाई पूछते हैं—"ब्रह्मचर्यके मानी क्या हैं? क्या उसका पूर्ण पालन शक्य है? और है तो क्या आप उसका पालन करते हैं?"

ब्रह्मचर्यका पूरा और—सच्चा अर्थ है ब्रह्मकी खोज। ब्रह्म सबमें बसता है इसलिए यह खोज अन्तर्ध्यान और उससे उपजनेवाले अन्तर्ज्ञानके सहारे होती है। अन्तर्ज्ञान इन्द्रियोंके संपूर्ण संयमके बिना अशक्य है। अतः मन, वाणी और कायासे संपूर्ण इन्द्रियोंका सदा सब विषयोंमें संयम ब्रह्मचर्य है।

ऐसे ब्रह्मचर्यका संपूर्ण पालन करनेवाली स्त्री या पुरुष नितान्त निर्विकार होता है। अतः ऐसे स्त्री-पुरुष ईश्वरके पास रहते हैं। वे ईश्वर-तुल्य होते हैं।

ऐसे ब्रह्मचर्यका कायमनोवाक्यसे अखण्ड पालन हो सकनेवाली बात है, इस विषयमें मुझे तिल-भरभी शंका नहीं; पर मुझे कहते दुःख होता है कि इस संपूर्ण ब्रह्मचर्यकी स्थितिको मैं अभी नहीं पहुंच सका हूं। पहुंचनेका प्रयत्न सदा चल रहा है। और इस देहमें ही वह स्थिति प्राप्त कर लेनेकी आशा भी मैंने नहीं छोड़ी है। कायापर मैंने काबू पा लिया है, जाग्रत अवस्थामें मैं सावधान रह सकता हूं। वाणीके संयमका यथायोग्य पालन करना भी सीख लिया है। पर विचारोंपर अभी बहुत काबू पाना बाकी है। जिस समय जो बात सोचनी हो उस क्षण वही बात मनमें रहनी चाहिए। पर ऐसा न होकर और बातें भी मनमें आ जाती हैं इससे विचारोंका द्वन्द्व मचा ही रहता है।

फिर भी जाग्रत अवस्थामें मैं विचारोंका एक-दूसरेसे टकराना रोक सकता हूं। मैं उस स्थितिको पहुंचा हुआ माना जा सकता हूं जब गन्दे विचार मनमें आ ही न सकें। पर निद्रावस्थामें विचारके ऊपर मेरा काबू कम रहता है। नींदमें अनेक प्रकारके विचार मनमें आते हैं, अनसोचे सपने भी दिखाई देते हैं। कभी-कभी इसी देहसे की हुई बातोंकी वासना भी जग उठती है। ये विचार अगर गन्दे हों तो स्वप्नदोष होता है। यह स्थिति विकारयुक्त जीवनकी ही हो सकती है।

मेरे विकारोंके विचार क्षीण होते जा रहे हैं। पर अभी उनका नाश नहीं हो पाया है। अपने विचारोंपर मैं पूरा काबू पा सका होता तो पिछले दस बरसके बीच जो तीन कठिन बीमारियां मुझे हुईं, फेफड़ेकी झिल्लीका शोथ (प्लूरिसी), अतिसार और आँतका फोड़ा (अपेंडिसाइटिस), वे न हुई होतीं। मैं मानता हूं कि निरोग आत्माका शरीर भी निरोग ही होता है। अर्थात् ज्यों-ज्यों आत्मा निरोग-निर्विकार होती जाती है त्यों-त्यों शरीर भी निरोग होता जाता है। पर निरोग शरीरके मानी बलवान शरीर नहीं होते। बलवान आत्मा क्षीण देह में ही बसती है। आत्म-बल ज्यों-ज्यों बढ़ता है, शरीर त्यों-त्यों क्षीण होता जाता है। पूर्णतया निरोग शरीर भी बहुत दुबला-पतला हो सकता है। बलवान शरीरमें अक्सर रोग तो रहता ही है। ऐसा न भी हो तो वैसे शरीरके लोगोंकी छूत तुरन्त लग जाती है। पर, पूरी तरह निरोग देहको छूत लग ही नहीं सकती। शुद्ध रक्तमें ऐसे कीड़ोंको दूर रखनेका गुण होता है।

यह अद्भुत दशा तो दुर्लभ ही है। नहीं तो मैं अबतक उसको पहुंच चुका होता, क्योंकि मेरी आत्मा गवाही देती है कि इस स्थितिको प्राप्त करनेके लिए जो उपाय करने चाहिए उनके करनेमें मैं पीछे रहनेवाला नहीं हूं। ऐसी एक भी बाहरी वस्तु नहीं है जो मुझे उससे दूर रखनेमें समर्थ हो। पर पिछले संस्कारोंको धो टालना सबके लिए सहज नहीं होता। इस तरह लक्ष्यतक पहुंचनेमें देर लग रही है, पर इससे मैंने तनिक भी हिम्मत नहीं हारी है। कारण यह है कि निर्विकार दशाकी कल्पना मैं कर सकता हूं। उसकी धुंधली झलक भी जब-तब पा जाता हूं। और इस रास्तेमें मैं अबतक

जितना आगे वढ़ सकता हूं वह मुझे निराश करनेके वदले आशावान ही वनाता है। फिर भी अगर मेरी आशा फलीभूत हुए विना मेरा शरीरपात हो जाय तो मैं यह न मानूंगा कि मैं विफल हो गया। मुझे जितना विश्वास अपनी इस देहके अस्तित्वका है उतना ही दूसरी देह मिलनेका भी है। इसलिए जानता हूं कि छोटे-से-छोटा प्रयत्न भी व्यर्थ नहीं जाता।

स्वानुभवकी इस चर्चाकी गरज इतनी ही है कि जिन लोगोंने मुझे पत्र लिखे हैं उनके और उन जैसे दूसरे भाइयोंके मनमें धीरज रहे और आत्म-विश्वास उत्पन्न हो। सवकी आत्मा एक ही है। सवकी आत्माकी शक्ति भी समान है। अन्तर इतना ही है कि कुछकी शक्ति प्रकट हो चुकी है, दूसरोंकी शक्तिका प्रकट होना अभी वाकी है। प्रयत्न करनेसे उन्हें भी वही अनुभव होगा।

अवतक मैंने व्यापक अर्थवाले ब्रह्मचर्यकी वात कही है। ब्रह्मचर्यका लौकिक अथवा प्रचलित अर्थ तो मन, वचन और कायासे विपयेन्द्रियका संयम-मात्र माना जाता है। यह अर्थ सही है क्योंकि इस संयमका पालन वहुत कठिन माना गया है। स्वादेन्द्रियके संयमपर इतना ही जोर नहीं दिया गया। इससे विपयेन्द्रियका संयम अधिक कठिन हो गया है—लगभग अशक्य हो गया है। इसके सिवा वैद्योंका अनुभव है कि जो शरीर रोगसे अशक्त हो गया है उसमें विपय-वासना अधिक उद्दीप्त रहती है। इससे भी इस रोगग्रस्त राष्ट्रको ब्रह्मचर्यका पालन कठिन लगता है।

मैंने ऊपर दुवले, पर निरोग शरीरकी वात कही है। इसका अर्थ कोई यह न लगाये कि हमें शरीर-वल वढ़ानेका यत्न ही न करना चाहिए। मैंने तो सूक्ष्मतम ब्रह्मचर्यकी वात अपनी अति प्राकृत भाषामें लिखी है, उससे कुछ गलतफहमी हो सकती है। जिसे सव इंद्रियोंके संपूर्ण संयमका पालन करना है उसे अन्तमें शरीरकी क्षीणताका अभिनन्दन करना ही होगा। शरीरका मोह और ममता जव क्षीण हो जायगी तव शरीर-वलकी इच्छा ही न रहेगी।

पर विपयेन्द्रियको जीतनेवाले ब्रह्मचारीका शरीर अति तेजस्वी और वलवान होना ही चाहिए। यह ब्रह्मचर्य भी अलौकिक वस्तु है। जिसकी

विषय-वासना स्वप्नमें भी नहीं जागती वह जगद्वंद्य है। उसके लिए दूसरे सब संयम सहज हैं, इसमें तनिक भी शंका नहीं।

इसी विषयको लेकर एक दूसरे भाई लिखते हैं—

"मेरी दशा दयनीय है। दफ्तरमें, रास्तेमें, रातमें पढ़ते समय काम करते हुए, और ईश्वरका नाम लेते समय भी वही विचार मनमें आते रहते हैं। विचारोंको किस तरह काबूमें रखूं? स्त्री-मात्रके प्रति मातृभाव कैसे पैदा हो? आंखोंसे शुद्ध वात्सल्यकी किरणें किस तरह निकलें? दूषित विचारोंकी जड़ कैसे उखड़े? ब्रह्मचर्य विषयपर आपका लेख अपने पास रख छोड़ा है। पर इस जगह मुझे उससे जरा भी मदद नहीं मिल रही है।"

यह स्थिति हृदय-द्रावक है। यही स्थिति बहुतोंकी होती है। पर जबतक मन उन विचारोंसे लड़ता रहे तबतक डरनेका कोई कारण नहीं। आंखें दोष करती हों तो उन्हें बंद कर लेना चाहिए। कान दोष करें तो उनमें रुई भर लेनी चाहिए। आंखोंको सदा नीची रखकर चलनेकी रीति अच्छी है। इससे उन्हें और कुछ देखनेका अवकाश ही नहीं रहता। जहां गंदी बातें होती हों या गन्दे गीत गाये जा रहे हों वहांसे तुरन्त रास्ता लेना चाहिए। जीभपर पूरा काबू हासिल करना चाहिए।

मेरा अपना अनुभव तो यह है कि जिसने जीभको नहीं जीता वह विषय-वासनाको नहीं जीत सकता। जीभको जीतना बहुत ही कठिन है। पर इस विजयके साथ ही दूसरी विजय मिलती है। जीभको जीतनेका एक उपाय तो यह है कि मिर्च-मसालेका बिलकुल या जितना हो सके त्याग कर दिया जाय। दूसरा उससे अधिक बलवान उपाय यह है कि मनमें सदा यह भाव रखें कि हम केवल शरीरके पोषणके लिए ही खाते हैं, स्वादके लिए कभी नहीं खाते। हम हवा स्वादके लिए नहीं पीते, बल्कि सांस लेनेके लिए पीते हैं। पानी जैसे महज प्यास बुझानेके लिए पीते हैं वैसे ही अन्न केवल भूख मिटानेके लिए खाना चाहिए। हमारे मां-बाप बचपनसे ही हमें इसकी उल्टी आदत लगाते हैं; हमारे पोषणके लिए नहीं बल्कि अपना प्यार दिखानेके लिए हमें तरह-तरहके स्वाद चखाकर हमें बिगाड़ते हैं। इस वातावरणका हमें सामना करना होगा।

पर विषय-वासनाको जीतनेका रामवाण उपाय तो रामनाम या ऐसा कोई और मंत्र है। द्वादशाक्षर मंत्र भी इस कामके लिए अच्छा है जिसकी जैसी भावना हो वैसे ही मंत्रका जप वह करे। मुझे बचपनसे राम-नाम जपना सिखाया गया था और उसका सहारा मुझे मिलता ही रहता है, इसलिए मैंने उसे सुझाया है। हम जो मंत्र अपने लिए चुनें उसमें हमें तल्लीन हो जाना चाहिए। जप करते समय भले ही हमारे मनमें दूसरे विचार आया करते हों फिर भी जो श्रद्धा रखकर मंत्रका जप करता ही जायगा उसे अन्तमें विघ्नोंपर विजय मिलेगी। इसमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं कि यह मंत्र उसका जीवन-डोर बनेगा और उसे सभी संकटोंसे उबारेगा। ऐसे पवित्र मंत्रका उपयोग किसीको आर्थिक लाभके लिए कदापि न करना चाहिए। इन मंत्रोंका चमत्कार हमारी नीतिकी रक्षा करनेमें है और ऐसा अनुभव हरएक प्रयत्न करनेवालेको थोड़े ही दिनोंमें हो जायगा। हां, इतना याद रहे कि यह मंत्र तोतेकी तरह न रटा जाय। उसमें अपने आत्माको पिरो देना चाहिए। तोता यंत्रकी तरह मंत्रको रटता रहता है। हमें उसे ज्ञानपूर्वक जपना चाहिए अवांछित विचारोंके निवारणकी भावना और मंत्रमें इसकी शक्ति है यह विश्वास रखकर।

: ४ :

# नैष्ठिक ब्रह्मचर्य

मुझसे ब्रह्मचर्यके विषयपर कुछ कहनेको कहा गया है। कुछ विषय ऐसे हैं जिनपर प्रसंग आनेपर 'नवजीवन'में मैं कुछ लिखा तो करता हूं पर भाषणोंमें उनकी चर्चा शायद ही करता हूं, इसलिए मैं जानता हूं कि ये बातें कहकर नहीं समझाई जा सकतीं और अति कठिन हैं। ब्रह्मचर्य भी वैसा ही विषय है। आप तो जिस ब्रह्मचर्यके बारेमें मुझसे कुछ सुनना चाहते हैं वह सामान्य ब्रह्मचर्य है, जिस ब्रह्मचर्यकी विस्तृत व्याख्या सब इन्द्रियोंका संयम है उसके विषयमें नहीं। पर यह सामान्य ब्रह्मचर्य भी शास्त्रोंमें अतिशय कठिन बताया गया है। यह कथन ९९ प्रतिशत सत्य है, सिर्फ एक फीसदीकी कमी रह गई है। ब्रह्मचर्यका पालन इसलिए कठिन लगता है कि हम उसके साथ-साथ दूसरी इन्द्रियोंका संयम नहीं करते। इन दूसरी इन्द्रियोंमें मुख्य जीभ है। जो जीभको वसमें रखेगा, ब्रह्मचर्य उसके लिए आसान-से-आसान चीज हो जायगा।

प्राणि-शास्त्रका अध्ययन करनेवाले कहते हैं कि पशु ब्रह्मचर्यका जितना पालन करता है मनुष्य उतना नहीं करता और यह सच है। हम इसके कारणकी खोज करें तो देखेंगे कि पशु अपनी जीभपर पूरा-पूरा काबू रखता है, इरादा और कोशिश करके नहीं बल्कि स्वभावसे ही। वह केवल घास-चारेपर गुजर करता है और वह भी इतना ही कि पेट भर जाय। वह जीनेके लिए खाता है, खानेके लिए जीता नहीं। पर हमारा रास्ता तो इसका उलटा ही है। मां बच्चेको तरह-तरहके स्वाद चखाती है, वह मानती है कि अधिक-से-अधिक चीजें खिलाना ही उसे प्यार करनेका तरीका है। ऐसा करके हम चीजोंका जायका बढ़ाते नहीं बल्कि घटाते हैं। स्वाद तो भूखमें रहता है। भूखवालेको सूखी रोटीमें जो स्वाद मिलता है वह बिना

भूखवालेको लड्डूमें नहीं मिलता। हम तो पेटको ठूंस-ठूंसकर भरनेके लिए तरह-तरहके मसाले काममें लाते और विविध व्यंजन बनाते हैं। फिर भी कहते हैं कि ब्रह्मचर्य चलता नहीं।

जो आंखें ईश्वरने हमें देखनेके लिए दी हैं उन्हें हम मलिन करते हैं और जो देखनेकी चीजें हैं उन्हें देखना नहीं सीखते। माता क्यों गायत्री न सीखे और बच्चेको न सिखाये? उसके गहरे अर्थमें पैठना उसके लिए जरूरी नहीं। उसका तत्त्व सूर्यकी उपासना है। इतना ही समझकर वह बच्चेसे सूर्यकी उपासना कराये तो काफी है। सूर्यकी उपासना तो सनातनी, आर्य-समाजी सभी करते हैं। सूर्यकी उपासना तो उस महामंत्रका स्थूलतम अर्थ है। यह उपासना क्या है? यही कि हम सिर ऊंचा रखकर सूर्यनारायणके दर्शन और उससे अपनी आंखोंकी शुद्धि करें। गायत्री-मंत्रके रचयिता ऋषि थे, द्रष्टा थे। उन्होंने हमें बताया है कि सूर्योदयमें जो नाटक है, जो सौन्दर्य है, जो लीला है उसके दर्शन हमें अन्यत्र नहीं होनेके। ईश्वर-जैसा कुशल सूत्रधार दूसरा नहीं मिल सकता और न आकाशसे अच्छी दूसरी रंगशाला मिल सकती है; पर कौन माता बच्चेकी आंखें धोकर उसे आकाशके दर्शन कराती है? माताके भावोंमें तो अनेक प्रपंच ही रहते हैं। बड़े घरोंमें जो शिक्षा मिलती है उसके फलस्वरूप लड़का शायद बड़ा अफसर हो जाय। पर घरमें जाने-बेजाने बच्चेको जो शिक्षा मिलती है उसमेंसे कितना वह ग्रहण कर लेता है इसका विचार कौन करता है?

मां-बाप हमारे शरीरको ढकते हैं। कपड़ोंसे हमें लाद देते हैं, हमें सजाते, संवारते हैं; पर इससे कहीं हम अधिक सुंदर बन सकते हैं। कपड़े बदनको ढकनेके लिए हैं, उसे सरदी-गरमीसे बचानेके लिए हैं, उसे सजानेके लिए नहीं। बच्चा सरदीसे ठिठुर रहा है तो हमें चाहिए कि उसे अंगीठीके पास ढकेल दें, मैदानमें दण्ड लगानेके लिए छोड़ दें या खेतमें काम करनेको भेज दें। तभी उसकी देह लोहेकी लाट बनेगी। ब्रह्मचर्यके पालनसे तो वह वज्र-जैसी हो ही जानी चाहिए। हम तो उसके शरीरका नाश कर डालते हैं। घरमें बंद रखकर जो गरमी हम उसे पहुंचाना चाहते हैं उससे तो उसकी त्वचामें ऐसी गरमी पैदा होती है जिसकी उपमा खुजलीसे ही दी

जा सकती है। अपने शरीरको बहुत लाड़-प्यारकर हम उसे बिगाड़ डालते हैं।

यह तो हुई कपड़ोंकी बात। घरमें होनेवाली बातचीतसे भी हम बच्चेके मनपर बुरा असर डालते हैं। उसके ब्याहकी बातें किया करते हैं। जो चीजें उसे देखनेको मिलती हैं उनमें भी बहुतेरी ऐसा ही असर डालनेवाली होती हैं। मुझे तो अचरज इस बातका होता है कि यह सब होते हुए भी हम दुनियामें सबसे बड़े जंगली क्यों न हो गए? मर्यादाके टूटनेमें सहायक होनेवाली इतनी बातोंके होते हुए भी वह ज्यों-त्यों निबाही जा रही है। ईश्वरने मनुष्यको कुछ ऐसा बनाया है कि बिगड़नेके लिए अनेक अवसर आते रहनेपर भी वह बच जाता है। यह ईश्वरकी अलौकिक कला है। ब्रह्मचर्यके रास्तेके ये विघ्न हम दूर कर दें तो उसका पालन शक्य ही नहीं बल्कि आसान हो जाता है।

इस दशामें भी हम शरीर-बलमें दुनियाका मुकाबला करनेकी इच्छा रखते हैं। इसके दो रास्ते हैं—आसुरी और दैवी। आसुरी मार्ग है—शरीर-बल बढ़ानेके लिए चाहे जैसे उपाय करना, चाहे जैसे पदार्थोंका सेवन करना, शारीरिक प्रतियोगिता करना, गो-मांस खाना इत्यादि। मेरा एक दोस्त बचपनमें मुझसे कहा करता था कि हमें मांस खाना ही होगा, नहीं तो हम अंग्रेजोंके जैसे तगड़े न हो सकेंगे। गुजरातीके प्रसिद्ध कवि नर्मदाशंकरने भी अपनी एक कवितामें ऐसी ही सलाह दी है। जापानको भी जब दूसरे देशोंका मुकाबला करना पड़ा तब गो-मांस उसके आहारमें शामिल हो गया। यों आसुरी-रीतिसे हमें देह बनानी हो तो ऐसे पदार्थोंका सेवन करना ही होगा।

पर दैवी रीतिसे शरीरका विकास करना हो तो ब्रह्मचर्य उसका एक-मात्र उपाय है, मुझे जब कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं तब मुझे अपने-आपपर दया आती है। यहां मुझे जो मान-पत्र दिया गया है उसमें मैं नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा गया हूं। मुझे कहना होगा कि जिसने मान-पत्र लिखा है उसे यह मालूम नहीं कि ब्रह्मचर्य कहते किसे हैं और उसे इसका भी खयाल नहीं कि मुझ-जैसा आदमी, जो विवाहित और बाल-बच्चोंवाला है, नैष्ठिक

ब्रह्मचारी कैसे हो सकता है ? नैष्ठिक ब्रह्मचारीको तो न कभी बुखार आता है न कभी सिर-दर्द होता है, न कभी खांसी सताती है और न कभी 'अपेंडिसाइटिस' (आंतका फोड़ा) होता है। डाक्टर कहते हैं कि आंतोंमें नारंगीके बीज रह जानेसे भी 'अपेंडिसाइटिस' होता है। पर जिसका शरीर स्वस्थ और निरोग है उसकी आंतोंमें बीज अटक ही नहीं सकते। जब आंतें शिथिल हो जाती हैं तभी इन चीजोंको अपने बलसे बाहर नहीं निकाल सकतीं। मेरी आंतें भी शिथिल हो गई होंगी इसीसे मैं ऐसी कोई चीज़ न पचा सका हूंगा। बच्चे क्या-क्या चीजें खा जाते हैं माता इसका ध्यान कहां रख सकती है; पर उनकी आंतोंमें उन्हें पचा लेनेकी स्वाभाविक शक्ति होती है।

इसलिए मैं चाहता हूं कि मुझपर नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके पालनका आरोप करके कोई मिथ्याचारी न बने। नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका तेज तो मुझमें जितना है उससे सौ गुना अधिक होना चाहिए। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं हूं। हां, होनेकी इच्छा अवश्य है। मैंने तो अपने अनुभवकी कुछ बूंदें आपके सामने रखी हैं जो ब्रह्मचर्यकी मर्यादा बताती हैं।

ब्रह्मचर्यका अर्थ यह नहीं है कि मैं स्त्री-मात्रका, अपनी बहनका भी, स्पर्श न करूं। ब्रह्मचारी होनेका अर्थ यह है कि जैसे कागजको छूनेसे मेरे मनमें कोई विकार नहीं उत्पन्न होता वैसे ही स्त्रीका स्पर्श करनेसे भी नहीं। मेरी बहन बीमार हो और ब्रह्मचर्यके कारण मुझे उसकी सेवा करनेसे हिचकना पड़े तो वह ब्रह्मचर्य कौड़ी कामका नहीं। मुर्देको छूकर हम जिस अविकार दशाका अनुभव कर सकते हैं उसी अविकार दशाका अनुभव जब किसी परम सुन्दरी युवतीको छूकर भी कर सकें तभी हम सच्चे ब्रह्मचारी हैं। अगर आप यह चाहते हैं कि आपके लड़के ऐसे ब्रह्मचर्यको प्राप्त करें तो इसका अभ्यास-क्रम आप नहीं बना सकते। कोई ब्रह्मचारी ही—चाहे वह मुझ जैसा अधूरा ही क्यों न हो—उसे बना सकता है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक संन्यासी होता है। ब्रह्मचर्याश्रम संन्याससे अधिक ऊंचा आश्रम है। पर हमने उसे गिरा दिया है इसीसे हमारा गृहस्थाश्रम बिगड़ा और वानप्रस्थ आश्रम भी बिगड़ा और संन्यासका तो नाम भी नहीं रहा। आज हमारी दशा ऐसी दीन है।

जो आसुरी मार्ग ऊपर हमने बताया है उसका अनुसरण करके तो पांच सौ सालमें भी हम पठानोंका मुकाबला न कर सकेंगे। हां, दैवी मार्गका अनुसरण किया जाय तो आज ही उनका मुकाबला किया जा सकता है। कारण यह कि दैवी मार्गके लिए आवश्यक मानसिक परिवर्तन छनभरमें हो सकता है। पर शरीरके बदलनेमें युग लग जाते हैं। इस दैवी मार्गका अनुसरण हम तभी कर सकेंगे जब हमारे पास पूर्वजन्मका पुण्य-बल होगा और हमारे मां-बाप हमारे लिए जरूरी साधन जुटा देंगे।

: ५ :

# सत्य बनाम ब्रह्मचर्य

एक मित्र श्री महादेव देसाईको लिखते हैं :

"आपको याद होगा कि कुछ दिन पहले 'नवजीवन' में ब्रह्मचर्य विपयपर एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसका आपने 'यंग इंडिया'में उलथा किया। उस लेखमें गांधीजीने स्वीकार किया है कि उन्हें अव भी जव-तव स्वप्न-दोप हो जाया करता है। उसे पढ़ते ही मेरे दिलमें यह वात आई कि ऐसे इकवालोंका असर अच्छा नहीं हो सकता। पीछे मुझे मालूम हुआ कि मेरी शंका निरावार न थी।

"विलायतमें प्रवासके समय प्रलोभनोंके रहते मैंने और मेरे मित्रोंने अपने चरित्रपर वव्वा नहीं आने दिया। हम माँस, मद्य और स्त्रीसे विलकुल दूर रहे। पर गांधीजीका लेख पढ़नेके वाद एक मित्रने हिम्मत हार दी और मुझसे कहा—'ऐसे भगीरथ प्रयासके वाद भी जव गांधीजीका यह हाल है तो हमारी क्या विसात ? ब्रह्मचर्य-पालनकी कोशिश करना वेकार है। गांधीजीकी स्वीकारोक्तिने मेरी दृष्टि विलकुल ही वदल दी। आजसे मुझे डूवा समझो।' थोड़ी हिचकके साथ मैंने उन्हें समझानेकी कोशिश की। वही दलील उनके सामने रखी जो आप या गांधीजी देते, 'अगर यह रास्ता गांधीजी जैसे पुरुपोंके लिए भी इतना कठिन है तो हम जैसोंके लिए तो कहीं ज्यादा कठिन होना चाहिए। इसलिए हमें दुगनी कोशिश करनी चाहिए।' पर सारी दलील वेकार गई। जिस चरित्रपर अवतक कलुपका छींटा भी न पड़ा था वह कीचड़से सन गया। अगर कोई आदमी गांधीजीको उनके इस पतनके लिए जिम्मेदार ठहराये तो वह या आप उसे क्या जवाव देंगे ?

"जवतक मेरे सामने ऐसा एक ही उदाहरण था तवतक मैंने आपको

नहीं लिखा। मुमकिन है, आप यह कहकर मुझे टाल देते कि यह दृष्टान्त तो अपवाद-रूप है। पर इधर मुझे इस तरहके और भी उदाहरण मिले हैं और मेरी आशंका सर्वथा साधार सिद्ध हुई है।

"मैं जानता हूं, कुछ बातें ऐसी हैं जो गांधीजीके लिए तो बहुत आसान हैं, मगर मेरे लिए बिलकुल नामुमकिन हैं। पर ईश्वरके अनुग्रहसे मैं यह भी कह सकता हूं कि कुछ बातें जो गांधीजीके लिए भी अशक्य हों मेरे लिए शक्य हो सकती हैं। इस ज्ञान या गर्वने ही मुझे अबतक गिरनेसे बचाया है, नहीं तो गांधीजीके उक्त इकबालने मेरे खतरेसे बाहर होनेके विश्वासकी जड़ पूरी तरह हिला दी है।

"क्या आप कृपाकर गांधीजीका ध्यान इस ओर खींचेंगे, खासकर जब वह अपनी आत्म-कथा लिखनेमें लग रहे हैं? सत्य और नग्न सत्यको कहना बेशक बहादुरीकी बात है; पर दुनिया और 'नवजीवन' तथा 'यंग-इंडिया'के पाठक इससे उनके बारेमें गलत राय कायम करेंगे। मुझे डर है कि एकके लिए जो अमृत है वह दूसरेके लिए विष न हो जाय।"

यह शिकायत पाकर मुझे अचरज नहीं हुआ। असहयोग-आन्दोलन जब पूरे जोरपर था और उसके दरमियान जब मैंने अपनेसे 'समझकी एक भूल' हो जानेकी बात स्वीकार की तब एक मित्रने निर्दोष भावसे मुझे लिखा—"अगर यह भूल थी तो आपको उसे कबूल नहीं करना चाहिए था। लोगोंको यह माननेके लिए उत्साहित करना चाहिए कि दुनियामें कम-से-कम एक आदमी तो है जो भूल-भ्रमसे परे है। लोग आपको ऐसा ही मानते थे। आपके भूल-स्वीकारसे वे हिम्मत हार देंगे।" यह आलोचना पढ़कर मुझे हँसी आई और रोना भी। हँसी आई लिखनेवालेके भोलेपनपर। पर लोगोंको एक पतनशील प्राणीके भूल-भ्रमसे परे होनेका विश्वास दिलाया जाय, यह विचार ही मेरे लिए असह्य था। जो आदमी जैसा है उसे वैसा जाननेमें सदा सबका हित है इससे कभी कोई हानि नहीं होती। मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरे झट अपनी भूलें स्वीकार कर लेनेसे लोगोंका हर तरह हित ही हुआ है। कम-से-कम मेरा तो इससे उपकार ही हुआ है।

यही बात मैं बुरे सपनोंका होना स्वीकार करनेके बारेमें भी कह सकता

हूं। पूर्ण ब्रह्मचारी न होते हुए भी मैं होनेका दावा करूं तो इससे दुनियाकी बड़ी हानि होगी। यह ब्रह्मचर्यकी उज्ज्वलताको मलिन और सत्यके तेजको धूमिल कर देगा। झूठे दावे करके ब्रह्मचर्यका मूल्य घटानेका साहस मैं कैसे कर सकता हूं ? आज मैं यह देख सकता हूं कि ब्रह्मचर्य-पालनके लिए जो उपाय मैं बताता हूं वे काफी नहीं साबित होते, वे हर जगह कारगर नहीं होते, और केवल इसलिए कि मैं पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं हूं। मैं दुनियाको ब्रह्मचर्य-का सीधा रास्ता न दिखा सकूं और वह मुझे पूर्ण ब्रह्मचारी माने, यह बात उसके लिए बड़ी भयानक होगी।

मैं सच्चा खोजी हूं, मैं पूर्ण जाग्रत हूं, मेरा प्रयत्न अथक और अडिग है—इतना ही जान लेना दुनियाके लिए क्यों काफी न हो ? इतना ही जानना औरोंको उत्साहित करनेके लिए क्यों पर्याप्त न हो ? झूठी प्रतिज्ञाओंसे सिद्धांत स्थिर करना गलत है। सिद्धियोंको उनका आधार बनाना ही बुद्धिमानी है। यह दलील क्यों दी जाय कि जब मुझ-जैसा आदमी मलिन विचारोंसे न बच सका तब औरोंके लिए क्या आशा हो सकती है ? उसके बजाय यह क्यों न सोचा जाय कि अगर गांधी, जो एक दिन काम-वासनाका गुलाम था आज अपनी पत्नीका मित्र और भाई बनकर रह सकता है और सुन्दर-से-सुन्दर युवतीको अपनी बहन या बेटीके रूपमें देख सकता है तब अदने-से-अदना और पापके गढ़में गिरा हुआ आदमी भी ऊपर उठनेकी आशा रख सकता है। ईश्वर अगर ऐसे कामुक-जनपर दया कर सकता है तो निश्चय ही दूसरे सब लोग भी उसकी दयाके अधिकारी होंगे।

पत्र लिखनेवाले भाईके जो मित्र मेरी कमियोंको जानकर पीछे हट गए वे कभी आगे बढ़े ही न थे। वह उनकी झूठी साधुता थी जो पहले ही झोंकेमें उड़ गई। सत्य, ब्रह्मचर्य और दूसरे सनातन नियम मुझ-जैसे अधकचरे जनोंकी साधनापर आश्रित नहीं होते। वे तो उन बहुसंख्यक जनोंकी तपश्चर्याके अटल आधारपर खड़े होते हैं जिन्होंने उनकी साधनाका यत्न किया और उनका संपूर्ण पालन कर रहे हैं। जब मुझमें उन पूर्ण पुरुषोंकी बगलमें खड़े होनेकी योग्यता आ जायगी तब मेरे शब्दोंमें आगेसे कहीं अधिक निश्चय और बल होगा। जिसके विचार इधर-उधर भटकते नहीं रहते,

जिसका मन बुरी बातोंको सोचता नहीं, जिसकी नींद सपनोंसे रहित होती है और जो सोते हुए भी पूरी तरह जागता रह सकता है वही सच्चे अर्थमें स्वस्थ है। उसे कुनैन खानेकी जरूरत नहीं होती। उसके शुद्ध रक्तमें हर तरहके छूत-विकारसे लड़ लेनेका बल होता है। तन-मन और आत्माकी पूर्ण स्वस्थ दशाकी प्राप्तिका प्रयत्न मैं कर रहा हूं। पत्र-लेखक तथा उनके अल्प श्रद्धावाले मित्रों और दूसरोंको मेरा निमंत्रण है कि इस कोशिशमें मेरा साथ दें और मेरी कामना है कि पत्र-लेखककी ही तरह उनके कदम भी आगे बढ़नेमें मुझसे ज्यादा तेज हों। मुझे जो-कुछ भी सफलता मिली है वह मुझमें कमियों और जब-तब वासनाके अधीन हो जानेकी दुर्बलताके होते हुए मिली है और मिली है केवल मेरे अथक प्रयत्न और भगवान्‌की दयामें मेरी असीम श्रद्धाकी बदौलत।

अतः किसीके लिए भी निराश होनेका कारण नहीं। महात्मापन कौड़ी कामका नहीं। यह तो मेरी बाह्य प्रवृत्तियों, मेरे राजनीतिक कामोंका प्रसाद है, जो मेरे जीवनका सबसे छोटा अंग है, फलतः चंद रोजा चीज है। जो वस्तु स्थायी मूल्यवाली है वह है मेरा सत्य-अहिंसा और ब्रह्मचर्य-आग्रह। यही मेरे जीवनका सच्चा अंग है। मेरे जीवनका स्थायी अंग कितना ही छोटा क्यों न हो, वह हेय माननेकी चीज नहीं है। वही मेरा सर्वस्व है। इस मार्गमें होनेवाली विफलताएं और भूल-भ्रमका ज्ञान भी मेरे लिए मूल्यवान् है, क्योंकि वे सफलताके मंदिरपर पहुंचनेकी सीढ़ियां हैं।

: ६ :

# ब्रह्मचर्य-पालनके उपाय

ब्रह्मचर्य और उसके साधनोंके विषयमें मेरे पास पत्रोंका ताँता लग रहा है। अतः दूसरे मौकोंपर जो-कुछ कह या लिख चुका हूं उसे ही दूसरे शब्दोंमें यहां दोहरा देता हूं। ब्रह्मचर्यका अर्थ शारीरिक संयम-मात्र नहीं है, बल्कि उसका अर्थ है संपूर्ण इन्द्रियोंपर पूर्ण अधिकार और मन-वचन-कर्मसे काम-वासनाका त्याग। इस रूपमें वह आत्म-साक्षात्कार या ब्रह्म-प्राप्तिका सीधा और सच्चा रास्ता है।

आदर्श ब्रह्मचारीको भोगकी वासना या सन्तानकी कामनासे जूझना नहीं पड़ता; वह कभी उसे कष्ट नहीं देती, उसके लिए सारा संसार एक विशाल परिवार होगा, मानव-जातिके कष्ट दूर करना ही उसकी सारी महत्त्वाकांक्षा होगी और सन्तानकी कामना उसके लिए विष-सी कड़वी होगी। मानव-जातिके दुःख-दैन्यका जिसे पूरा पता मिल गया है काम-वासना उसके चित्तको चलायमान कर ही नहीं सकती। अपने अंदर बहने-वाले शक्ति-स्रोतका पता उसे अपने-आप लग जायगा और वह सदा उसे स्वच्छ, निर्मल बनाये रखनेका यत्न करेगा। उसकी छोटी-सी शक्तिके सामने सारा संसार श्रद्धासे सिर झुकायेगा और उसका प्रभाव राज-दण्डधारी सम्राट्के प्रभावसे बढ़ा-चढ़ा होगा।

पर मुझसे कहा जाता है कि यह आदर्श अशक्य है और 'तुम स्त्री-पुरुषमें जो एक-दूसरेके प्रति सहज आकर्षण है उसका खयाल नहीं करते।' पर यहां जिस काम-प्रेरित आकर्षणकी ओर संकेत है मैं उसे स्वाभाविक माननेसे इनकार करता हूं। वह प्रकृति-प्रेरित हो तो हमें जान लेना चाहिए कि प्रलय होनेमें अधिक देर नहीं है। स्त्री और पुरुषके बीचका सहज आकर्षण वह है जो भाई और बहन, माँ और बेटे, बाप और बेटीके बीच होता है। संसार

इसी स्वाभाविक आकर्षण पर टिका है। मैं संपूर्ण नारी-जातिको अपनी बहन, बेटी और माँ न मानूँ तो काम करना तो दूर रहे, मेरे लिए जीना भी कठिन हो जायगा। मैं उन्हें वासनाभरी दृष्टिसे देखूँ तो यह नरकका सीधा रास्ता होगा।

सन्तानोत्पादन स्वाभाविक क्रिया अवश्य है; पर बँधी हदके भीतर ही। उस सीमाको लाँघना स्त्री-जातिके लिए खतरा पैदा करता, जातिको हत-वीर्य बनाता, बीमारियोंको बुलाता, पापको प्रोत्साहन देता और दुनियाको धर्म तथा ईश्वरसे विमुख करता है। जो आदमी सदा काम-वासनाके वसमें है वह बिना लंगरकी नाव है। ऐसा आदमी समाजका पथ-प्रदर्शक हो, अपने लेखोंसे उसे पाट रहा हो और लोग उनसे प्रभावित हो रहे हों तो फिर समाजका कहां ठिकाना लगेगा? फिर भी आज यही हो रहा है। मान लीजिए, दीपशिखाके गिर्द चक्कर काटनेवाला पतंगा अपने क्षणिक सुखका वर्णन करे और हम उसे आदर्श मान उसका अनुकरण करें तो हमारी गति क्या होगी? नहीं मुझे अपनी सारी शक्तिके साथ कहना होगा कि कामका आकर्षण पति-पत्नीके बीच भी अस्वाभाविक है। विवाहका उद्देश्य पति-पत्नीके हृदयको हीन-वासनाओंसे शुद्ध करके उन्हें भगवान्‌के निकट ले जाना है। पति-पत्नीके बीच भी कामना-रहित प्रेम होना नामुम-किन नहीं है। मनुष्य पशु नहीं है। पशुयोनिमें अगणित जन्म लेनेके बाद वह कहीं इस ऊँची दशाको पहुंच सका है। उसका जन्म तनकर खड़ा होनेके लिए हुआ है, घुटनोंके बल चलने या रेंगनेके लिए नहीं। पशुता मनुष्यतासे उतनी ही दूर है जितना चेतनसे जड़।

अन्तमें संक्षेपमें ब्रह्मचर्य-पालनके उपाय बताता हूं—

पहला काम है ब्रह्मचर्यकी आवश्यकताको समझ लेना।

दूसरा काम है इन्द्रियोंको क्रमशः वशमें लाना। ब्रह्मचारीको अपनी जीभको तो वसमें करना ही होगा। उसे जीनेके लिए खाना चाहिए, रसना-सुखके लिए नहीं। आंखसे वही चीजें देखनी चाहिएं जो शुद्ध, निष्पाप हों, गन्दी चीजोंकी ओरसे उसे अपनी आंखें बन्द कर लेनी चाहिए। निगाह नीची करके चलना—उसे इधर-उधर नचाते न रहना, शिष्ट संस्कारवान

होनेकी पहचान है। इसी तरह ब्रह्मचारीको गन्दी अश्लील बातें सुनने और नाकसे तीव्र, उत्तेजक गंध सूंघनेसे भी परहेज रखना होगा। साफ-सुथरी मिट्टीकी सुगंध बनावटी इत्रों, एसंसोंकी खुशबूसे कहीं मधुर होती है। ब्रह्मचर्य-पालनके अभिलाषीके लिए यह भी आवश्यक है कि जबतक वह जागता रहे अपने हाथ-पैरोंको किसी-न-किसी अच्छे काममें लगाये रखे। वह कभी-कभी उपवास भी कर लिया करे।

तीसरा काम है शुद्ध, स्वच्छ आचरणवालोंका ही संग-साथ करना, उन्हींसे मित्रता जोड़ना और पवित्र पुस्तकें ही पढ़ना।

आखिरी पर वैसे ही महत्त्वका काम है प्रार्थना। ब्रह्मचारीको नित्य नियमपूर्वक संपूर्ण अन्त:करणसे राम नामका जप करना और भगवान्‌के प्रसादकी प्रार्थना करनी चाहिए।

इनमेंसे एक भी बात ऐसी नहीं है जो साधारण स्त्री-पुरुषके लिए कठिन हो। वे अति सरल हैं; पर उनकी सरलता ही कठिनाई बनी रही है। जिसके दिलमें चाह है उसके लिए राह निहायत आसान है। लोगोंमें ब्रह्मचर्य-पालनकी सच्ची इच्छा नहीं होती, इसीसे वे बेकार भटका करते हैं। दुनिया ब्रह्मचर्यके कमोबेश पालनपर ही टिक रही है, यही इस बातका प्रमाण है कि वह आवश्यक और हो सकनेवाला काम है।

: ७ :

# जनन-नियमन

बहुत झिझक और अनिच्छाके साथ मैं इस विषयपर कलम उठा रहा हूं। मैं जबसे दक्षिण अफ्रीकासे लौटा तभीसे मुझे कितने ही पत्र मिलते रहे हैं, जिनमें जनन-नियमनके कृत्रिम साधनोंसे काम लेनेके बारेमें मेरी राय पूछी जाती है। उन पत्रोंके उत्तर निजी तौरपर तो मैंने दे दिये हैं; पर सार्वजनिक रूपमें अबतक इस विषयकी चर्चा नहीं की थी। इस विषयने आजसे २५ साल पहले, जब मैं विलायतमें पढ़ता था, अपनी ओर मेरा ध्यान खींचा था। उन दिनों वहां एक संयमवादी और एक डाक्टरके बीच गहरी बहस चल रही थी। संयमवादी प्राकृतिक उपायों—इन्द्रिय-संयमके सिवा और किसी उपायको जायज न मानता था और डाक्टर बनावटी साधनोंका प्रबल समर्थक था। उस कच्ची उम्रमें कृत्रिम उपायोंकी ओर थोड़े दिन झुकनेके बाद मैं उनका कट्टर विरोधी हो गया। अब मैं देखता हूं कि कुछ हिन्दी-पत्रोंमें इन उपायोंका वर्णन इतने नग्नरूपमें हो रहा है कि उसे देखकर हमारी शिष्टताकी भावनाको गहरा धक्का लगता है। मैं यह भी देख रहा हूं कि एक लेखकको कृत्रिम उपायोंके समर्थकोंमें मेरा नाम लेते हुए भी संकोच नहीं हो रहा है। मुझे एक भी अवसर याद नहीं आता जब मैंने इन उपायोंके समर्थनमें कुछ कहा या लिखा हो। उनके समर्थकोंमें दो प्रतिष्ठित पुरुषोंके नाम लिये जाते भी मैंने देखा है। पर उनकी इजाजतके बिना उनके नाम प्रकट करते मुझे हिचक होती है।

जनन-नियमनकी आवश्यकताके विषयमें तो दो मत हो ही नहीं सकते। पर युगोंसे इसका एक ही उपाय हमें बताया गया है और वह है इन्द्रिय-निग्रह या ब्रह्मचर्य। यह अचूक, रामबाण उपाय है, जिससे काम लेनेवालेकी हर तरह भलाई होती है। चिकित्सा-शास्त्रके जानकार गर्भ-निरोधके

अप्राकृतिक साधन ढूंढ़नेके वदले अगर मन-इन्द्रियोंको काबूमें रखनेके उपाय ढूंढ़ें तो मानवजाति उनकी चिर-ऋणी होगी । स्त्री-पुरुपके समागमका उद्देश्य इन्द्रिय-सुख नहीं वल्कि सन्तानोत्पादन है और जहाँ सन्तानकी इच्छा न हो वहाँ संभोग पाप है ।

वनावटी साधनोंका उपयोग तो बुराइयोंको वढ़ावा देना है । वे स्त्री और पुरुपको नतीजेकी ओरसे विलकुल लापरवाह वना देते हैं । और इन उपायोंको जो प्रतिष्ठा दी जा रही है उसका फल यह होगा कि लोकमत व्यक्तिपर अभी जो थोड़ा दाव-अंकुश रखता है वह जल्दी ही गायव हो जायगा । अप्राकृतिक उपायोंसे काम लेनेका निश्चित परिणाम मानसिक दुर्वलता और नाड़ी-मण्डलका शिथिल हो जाना है । दवा मर्जसे महंगी पड़ेगी । अपने कर्मके फलसे वचनेकी कोशिश नासमझी और पाप है । जरूरतसे ज्यादा खा लेनेवालेके लिए यही अच्छा है कि उसके पेटमें दर्द हो और उसे उपवास करना पड़े । ठूंस-ठूंसकर खाना और फिर चूरन खाकर उसके स्वाभाविक फलसे वच जाना उसके लिए वुरा है । काम-वासनाकी मनमानी तृप्ति करना और उसके नतीजोंसे वचना तो और भी वुरा है । प्रकृतिके हृदयमें दया माया नहीं है, जो कोई उसके नियमोंको तोड़ेगा उससे वह पूरा वदला लेगी । नीति-संगत फल तो नीति-संगत संयमसे ही प्राप्त हो सकते हैं, और तरहके प्रतिवंध तो जिस वुराईसे वचनेके लिए लगाये जाते हैं उसको उलटा और वढ़ा देते हैं ।

कृत्रिम उपायोंके उपयोगके समर्थकोंकी वुनियादी दलील यह है कि संभोग जीवनकी एक आवश्यक क्रिया है । इससे वड़ा भ्रम और कोई हो नहीं सकता । जो लोग चाहते हैं कि जितने वच्चोंकी हमें जरूरत है उससे ज्यादा वच्चे पैदा न हों, उन्हें चाहिए कि उन नीतिसंगत उपायोंकी खोज करें जो हमारे पूर्व पुरुपोंने ढूंढ़ निकाले थे, और उनका चलन फिर कैसे चल सकता है इसका उपाय मालूम करें । उनके सामने वहुत-सा आरंभिक कार्य करनेको पड़ा है । वाल-विवाह जन-संख्याकी वृद्धिका एक प्रधान कारण है । रहन-सहनका वर्तमान ढंगभी वच्चोंकी वेरोक वाढ़में वहुत सहायक होता है । इन कारणोंकी खोज करके इन्हें दूर करनेका उपाय किया जाय तो समाज

सदाचारकी एक-दो सीढ़ियाँ और चढ़ जायगा। और अगर जनन-निरोधके उत्साही समर्थकोंने इनकी उपेक्षा की, प्राकृतिक साधनोंका चलन आम हो गया तो नतीजा नैतिक पतनके सिवा और कुछ नहीं हो सकता।

जो समाज विविध कारणोंसे पहले बलवीर्य-रहित, हो चुका है वह जन्म-निरोधके कृत्रिम उपायोंको अपनाकर अपने-आपको और निर्बल ही बनायेगा। अतः जो लोग बिना सोचे-विचारे कृत्रिम साधनोंसे काम लेनेका समर्थन कर रहे हैं उनके लिए इससे अच्छी बात दूसरी नहीं हो सकती कि इस विषयका नये सिरेसे अध्ययन करें, अपने हानिकर प्रचारको रोकें और विवाहित-अविवाहित दोनोंको ब्रह्मचर्यके रास्तेपर चलानेकी कोशिश करें।

: ८ :

# कुछ दलीलोंपर विचार

जनन-नियमन विषय पर मेरे लेखको पढ़कर बनावटी साधनोंके समर्थकोंने मेरे साथ जोरोंसे पत्र-व्यवहार आरम्भ कर दिया है। मुझे इसीकी आशा भी रखनी चाहिए थी। उनकी चिट्ठियोंमेंसे मैं तीनको, जो नमूनेका काम दे सकती हैं, चुन लेता हूं। एक पत्र और भी देने लायक था, पर उसमें अधिकतर धर्म-शास्त्रोंकी दलीलें दी गई हैं, इसलिए उसे छोड़ देता हूं। उन तीन पत्रोंमेंसे एकका उलथा यह है—

"जनन-नियमन विषयपर आपका लेख मैंने बड़ी रुचिके साथ पढ़ा। इन दिनों इस विषयने बहुतेरे शिक्षित पुरुषोंका ध्यान अपनी ओर खींच रखा है। पिछले साल हम लोगोंमें इस विषयपर लम्बे और गरम मुबाहसे हुए। उनसे कम-से-कम इतना तो साबित हो गया कि युवक वर्गको इस मसलेसे गहरी दिलचस्पी पैदा हो गई है, इसके बारेमें लोगोंमें बहुत-सी ग़लत धारणाएं हैं और इसकी चर्चामें बनावटी शालीनता बहुत बरती जाती है, और इसकी बहस खुलकर की जाय तो वह सभ्यताकी सीमाका उल्लंघन क्वचित् ही करती है। आपका लेख पढ़कर मैं इस बारेमें फिरसे सोचने लगा हूं। मेरी प्रार्थना है कि आप इस विषयमें मेरी थोड़ी रहनुमाई करें, जिससे मेरे मनमें उठनेवाली बहुत-सी शंकाएं दूर हो जायं।

"मैं इस बातको मानता हूं कि 'सन्तति-नियमनकी आवश्यकताके बारेमें दो मत नहीं हो सकते।' मैं यह भी मानता हूं कि ब्रह्मचर्य इसका अचूक और रामबाण उपाय है और जो उसे काममें लाता है वह उसका भला ही करता है। पर मैं जानना चाहता हूं कि क्या यह प्रश्न आत्म-संयमसे अधिक जनन-निरोधका नहीं है? अगर है तो हमें देखना चाहिए कि संयम या इंद्रिय-निग्रह साधारण मनुष्यके लिए सन्तति-नियमनका सुलभ मार्ग है।

"मैं मानता हूं कि इस प्रश्नपर दो दृष्टियोंसे विचार किया जा सकता है—व्यक्तिकी दृष्टिसे और समाजकी दृष्टिसे। हर आदमीका कर्तव्य है कि अपनी विषय-भोगकी वासनाओंको दबाकर अपने आत्मबलकी वृद्धि करे। हर जमानेमें थोड़ेसे ऐसे महान् पुरुष पैदा होते हैं जो यह उच्च आदर्श अपने सामने रखते और आजीवन केवल उसीका अनुगमन करते हैं। पर अनावश्यक बच्चोंकी बाढ़ रोकनेके मसलेको, जिसे हल करनेपर हम तुल रहे हैं, वे समझते हैं, इसमें मुझे शक है। संन्यासी मोक्ष-प्राप्तिका प्रयासी होता है, सन्तति-नियमनका नहीं।

"पर क्या यह उपाय उस आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नको समयकी उचित सीमाके अंदर हल कर सकता है जो जन-समाजके बहुत बड़े भागके लिए अतिशय महत्त्वका है? हर एक समझदार और आगेकी बात सोच सकनेवाले गृहस्थके सामने यह समस्या आज भी रास्ता रोककर खड़ी है। एक आदमी कितने बच्चोंको खिला-पिला, पहना, पढ़ा और उनकी रोजी-रोजगारका उपाय कर सकता है,—यह ऐसा प्रश्न है जिसे हमें तुरन्त हल करना होगा। मनुष्य-स्वभाव कैसा है यह आप जानते ही हैं। उसका खयाल रखते हुए क्या आप हजारों-लाखों आदमियोंसे यह आशा रख सकते हैं कि सन्तानकी आवश्यकता पूरी हो जानेके बाद वे संभोगका सुख लेना बिलकुल ही बंद कर देंगे? मैं समझता हूं कि आप काम-वासनाकी बुद्धि-संगत, संयत तृप्तिकी इजाजत देंगे, जैसी कि हमारे स्मृतिकारोंकी सलाह है। अधिकांश जनोंसे न तो अपनी वासनाकी लगाम बिलकुल ढीली कर देनेको कहा जा सकता है, और न उसे पूरी तरह दबा देनेको। उनसे तो बस यही कहा जा सकता है कि उसे नियमके अंदर रखें, बीचके रास्तेपर चलाएं। पर यह मुमकिन हो तो भी क्या जरूरतसे ज्यादा बच्चोंका पैदा होना बन्द होगा? मैं मानता हूं कि इससे अधिक अच्छे आदमी पैदा होंगे, पर दुनियाकी आबादी घटेगी नहीं बल्कि जन-संख्याकी वृद्धिकी समस्या इससे और विषम हो जायगी, क्योंकि स्वस्थ-सबल समाज निकम्मे लोगोंकी बनिस्बत ज्यादा तेजीसे बढ़ता है। जानवरोंकी अच्छी नस्ल पैदा करनेकी कला हमें अच्छे गाय-बैल और घोड़े देते है। पर पांचके बदले चार नहीं देती।

"मैं मानता हूं कि 'स्त्री-पुरुषके समागमका उद्देश्य संभोग-सुख नहीं, किन्तु सन्तानकी प्राप्ति है।' पर आपको भी यह स्वीकार करना होगा कि एकमात्र सुखकी चाह ही मनुष्यको संभोगके लिए भले ही प्रेरित न करती हो; फिर भी अधिकतर वही इसके लिए उकसाती है। प्रकृति अपना काम निकालनेके लिए हमारे सामने यह चारा फेंकती है। सुख न मिले तो कितने उसके प्रयोजनकी पूर्ति करेंगे या करते हैं? ऐसे आदमी कितने होंगे जो सुखके लिए संभोग करते हों और सन्तानका प्रसाद पा जाते हों? और ऐसे कितने हैं जो सन्तानकी कामनासे संभोग करते हों और उसके घालमें सुखभी भोग लेते हों? आप कहते हैं—'जहां सन्तानकी इच्छा न हो वहां संभोग पाप है, आप जैसे संन्यासीको यह कहना जरूर फबता है। आपने यह भी तो कहा ही है कि जो अपने पास जरूरतसे ज्यादा पैसा या चीजें रखता है वह 'चोर' और 'डाकू' है। और जो दूसरोंको अपनेसे अधिक प्यार नहीं करता वह अपने-आपको कम प्यार करता है। पर बेचारे दीन-दुर्बल मनुष्योंके प्रति आप इतने कठोर क्यों हो रहे हैं? सन्तानकी इच्छाके बिना उन्हें थोड़ा-सा सुख मिल जाय तो उनके तन-मनमें होनेवाले उलट-फेरोंसे पैदा होनेवाली बेचैनी मिट जाय। बच्चे पैदा होनेका डर कुछ लोगोंके मानसमें अशांति उत्पन्न कर देगा, कुछ लोग इस डरसे ब्याह करनेमें देर करेंगे। साधारणतः ब्याहके कुछ बरस बाद संतानकी चाह समाप्त हो जाती है। तो उसके बाद क्या पति-पत्नीका समागम अपराध माना जायगा? क्या आप समझते हैं कि जो आदमी इस 'अपराध'के डरसे अपनी बेचैन वासनाओंको दबा रखता है वह नीतिमें दूसरोंसे ऊंचा है? आखिर जब जरूरतसे ज्यादा पैसा या माल-जायदाद बटोर रखनेवाले 'चोरों'को आप सहन कर सकते हैं तो इन अपराधियोंको क्यों सहन नहीं कर सकते? इसलिए कि चोरोंकी संख्या और बल इतना अधिक है कि उनको सुधारना संभव नहीं?

"अन्तमें आप यह फरमाते हैं कि 'बनावटी साधनोंका उपयोग बुराईको बढ़ावा देना है। वे स्त्री और पुरुषको नतीजेकी ओरसे बिलकुल लापरवाह बना देते हैं।' यह इलजाम सही हो तो संगीन है। मैं जानना चाहता हूं कि 'लोकमत'में क्या कभी इतना बल रहा है कि वह संभोगके अतिरेकको

रोक सके ? मैं जानता हूं कि पियक्कड़ लोकनिन्दाके डरसे कुछ कम शराब पीता है। पर मैं इन उक्तियोंसे भी अवगत हूं कि 'जो मुंह चीरता है वह आहार भी देता है।' और 'बच्चे तो भगवान्‌की देन हैं।' मुझे इस वहमका भी पता है कि बच्चोंकी बहुलता पुरुषत्वका प्रमाण है। मैं ऐसे उदाहरण जानता हूं जहां इस धारणाने पतिको पत्नीकी देहके उपभोगका अबाध अधिकार प्रदान कर दिया है और काम-वासनाकी तृप्तिको ही पति-पत्नीके नातेका मुख्य अर्थ मान लिया है। इसके सिवा क्या यह तय है कि अप्राकृतिक साधनोंसे काम लेनेका निश्चित परिणाम मानसिक दुर्बलता और नाड़ी-मण्डलका शिथिल हो जाना है ? तरीके और तरीकेमें बहुत अन्तर करता है और मेरा विश्वास है कि विज्ञान इस कामकी अ-हानिकर विधियां ढूंढ़ चुका है या जल्दी ही ढूंढ़ लेगा। यह कुछ मनुष्यकी बुद्धिके बाहरकी बात नहीं है।

"पर जान पड़ता है, आप किसी भी अवस्थामें उनसे काम लेनेकी इजाजत न देंगे, क्योंकि कर्मके फलसे बचनेकी कोशिश अधर्म है, इसमें एतराजकी बात इतनी ही है कि आप यह मान लेते हैं कि सन्तानकी इच्छा न होनेपर अपनी वासनाकी संयत तृप्ति भी पाप है। इसके सिवा मैं पूछता हूं, बच्चा पैदा होनेका डर क्या कभी किसीको अपनी भोगेच्छा तृप्त करनेसे रोक सका है ? कितने ही स्त्री-पुरुष अपने सुख-स्वास्थ्यकी हानिकी परवाह न कर अताइयों, नीम-हकीमोंके बताये उपाय करते हैं। अपने कर्मके फलसे बचनेके लिए कितने गर्भ गिराये जाते हैं ? पर गर्भ-स्थिति या बच्चा पैदा होनेका डर कारगर रोक साबित हो भी जाय तो इसका नैतिक परिणाम नगण्य-सा ही होगा। फिर बच्चा मां-बापके पापका फल भोगे—व्यक्तिकी नासमझी समाजकी हानि करे—यह कहांका न्याय है ? यह सही है कि 'प्रकृति दया माया रहित है और अपने नियमका उल्लंघन करनेवालेको पूरा दंड देती है।' पर कृत्रिम साधनोंसे काम लेना प्रकृतिके नियमको तोड़ना है यह कैसे मान लिया जाय ? बनावटी दांत, आंख, हाथ, पांवको कोई अप्राकृतिक नहीं कहता। अप्राकृतिक वही है जिससे हमारी भलाई नहीं होती। मैं यह नहीं मानता कि मनुष्य स्वभावसे बुरा है और इन उपायोंका

उपयोग उसे और वुरा वना देगा। स्वाधीनताका दुरुपयोग आज भी कुछ कम नहीं होता। हमारा हिन्दुस्तान भी इस विपयमें दूसरोंपर हँसने लायक नहीं है। इस नई शक्तिका उपयोग समझदारीके साथ किया जायगा, यह साबित करना भी उतना ही आसान है जितना यह साबित करना कि उसका दुरुपयोग किया जायगा। हमें जान लेना चाहिए कि मनुष्य प्रकृतिपर यह बड़ी विजय प्राप्त करना ही चाहता है और उसकी उपेक्षा करके हम अपनी ही हानि करेंगे। वुद्धिमानी इसमें है कि हम इस अशक्तिको कावूमें रखें, उससे भागनेमें नहीं है। लोक-हितके लिए काम करनेवाले कुछ अच्छे-से-अच्छे लोग भी, जो इन उपायोंके प्रचारक वन रहे हैं, इसलिए नहीं कि लोगोंको मनमाना इन्द्रिय-सुख भोगनेका सुभीता हो जाय, वल्कि इसलिए कि लोग अपनी वासनाको कावूमें लाना सीखें।

हमें यह वात भी याद रखनी होगी कि नारी-जाति और उसकी आवश्यकताओंकी हम वहुत उपेक्षा कर चुके। वह चाहता है कि इस वारेमें उसे भी जवान खोलनेका मौका दिया जाय, क्योंकि वह पुरुपको इसकी इजाजत देनेको तैयार नहीं है कि वह उसकी देहको वच्चे पैदा करनेका खेत समझे। सभ्यताका वोझ उसके लिए इतना भारी पड़ रहा है कि वड़े कुटुंवके पालनका वोझ उससे नहीं चल सकता। डाक्टर मेरी स्टोप्स और कुमारी ऐलन स्त्रीके 'नाड़ी-संस्थानके शिथिल हो जाने'का उपाय कभी न करेंगी। उनके वताये हुए उपाय ऐसे हैं जो स्त्रियों द्वारा काममें लाये जानेसे ही कारगर हो सकते हैं और उनके उपयोगसे असंयत विपय-भोगको प्रोत्साहन मिलनेकी वनिस्वत स्त्रीके मातृकर्तव्यका अधिक अच्छी तरह पालन कर सकनेकी आशा रखी जानी चाहिए। जो हो, कुछ अवस्थाएं ऐसी होती हैं जव छोटी वुराईको स्वीकार कर लेना वड़ी वुराईसे वचा देता है। कुछ वीमारियां इतनी खतरनाक हैं कि नाड़ी-मण्डलकी शिथिलताकी जोखिम उठाकर भी उनसे वचना ही होगा। वच्चेको दूध पिलानेके कालके वीच ऐसे 'तटस्थ काल' आते हैं जव समागम अनिवार्य होता है, पर उस समय गर्भ रह जाय तो स्त्रीके स्वास्थ्यके लिए हानिकर होता है। कितनी ही स्त्रियोंके लिए प्रसवमें जानकी जोखिम रहती है, यद्यपि और सव तरह वे स्वस्थ होती हैं।

"मैं यह नहीं चाहता कि आप जनन-नियंत्रणके प्रचारक हो जायं, मैं आपसे इसकी आशा भी नहीं रख सकता। आपके दिव्यतम रूपके दर्शन तो तभी होते हैं जब आप सत्य और ब्रह्मचर्यकी पवित्र ज्योति जगाते और उसके खोजियोंके सामने रखते हों। पर नासमझकी अपेक्षा समझदार मां-बापको इस ज्योतिकी तलाश अधिक होगी। जो जन्म-निरोधकी आवश्यकताको समझता है वह वासनाके निरोधका सामर्थ्य सहजमें प्राप्त कर लेगा। स्वच्छन्दता, बिना सोचे-विचारे काम करनेकी प्रवृत्ति और अज्ञान आज इतना बढ़ रहा है कि आपकी आवाज भी जंगलमें रोने-जैसी हो रही है। आपके संकोचभरे और अनिच्छासे लिखे हुए लेखमें इसके लिए जितना अवकाश है इस विषय पर उससे अधिक खुली और आलोकजनक चर्चा होनेकी आवश्यकता है। आप उसमें शामिल न हो सकें तो कम-से-कम उसकी आवश्यकता तो आपको स्वीकार कर लेनी चाहिए और जरूरी हो तो समय रहते उसकी रहनुमाई भी करनी चाहिए, क्योंकि हमारे रास्तेमें अनेक खड्डु-खाइयां हैं और उन खतरोंकी ओरसे आंखें मूंद लेने तथा इस विषयपर कलम उठानेमें हिचकनेसे कोई लाभ न होगा।"

मैं आरम्भमें ही यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि यह लेख न मैंने संन्यासियोंके लिए लिखा है और न संन्यासीकी हैसियत से लिखा है। संन्यासी-का जो अर्थ समझा जाता है उस अर्थमें मैं अपने-आपको संन्यासी कह भी नहीं सकता। मैंने जो-कुछ लिखा है, उसका आधार मेरा २५ बरसका अपना अखंड अनुभव ही है,जिसमें यदा-कदा, व्रतभंग हुआ है और उन मित्रोंका अनुभव है जिन्होंने इस आजमाइशमें इतने दिनोंतक मेरा साथ दिया कि उनके अनुभवसे मैं कुछ नतीजे निकाल सकता हूं। इस प्रयोगमें युवा और वृद्ध, पुरुष और स्त्री सभी शामिल हैं। उसमें किसी हदतक वैज्ञानिक प्रामाणिकता होनेका दावा भी मैं कर सकता हूं। उसका आधार निस्सन्देह शुद्ध नैतिक था; पर उसका आरम्भ सन्तति-नियमनकी इच्छासे ही हुआ। मेरी अपनी स्थिति खास तौरसे ऐसी ही थी। बादके सोच-विचारसे उससे जबर्दस्त नैतिक परिणाम उत्पन्न हुए; पर सब सर्वथा स्वाभाविक क्रमसे ही उपजे। मैं यह कहनेका साहस भी कर सकता हूं कि समझदारी और सावधानी-

से काम किया जाय तो विना अधिक कठिनाईके ब्रह्मचर्यका पालन किया जा सकता है। यह दावा अकेला मेरा ही नहीं है, जर्मनी और दूसरे देशोंके प्रकृति-चिकित्सक भी यही कहते हैं। ये लोग वताते हैं कि जलका उपचार, मिट्टीका लेप और विना मिर्च-मसालेका भोजन, खासकर फलाहार नाड़ी मंडलको शांत करते हैं, और काम-क्रोधादिको जीतना आसान वना देते हैं तथा साथ-साथ नाड़ी-जालको सवल-सतेज भी वनाते हैं। राजयोगीको योग-क्रियाओंमेंसे अकेले प्राणायामके नियमित अभ्याससे भी यही लाभ होता है। न पश्चिमी उपचार-विधि संन्यासियोंके लिए है और न प्राचीन भारतीय साधन-प्रणाली ही, वल्कि दोनों खास तौरसे गृहस्थोंके लिए ही हैं।

कहा जाता है कि जनन-निरोधकी आवश्यकता हमारे राष्ट्रके लिए है, क्योंकि उसकी आवादी वहुत वढ़ती जा रही है। मुझे इसे माननेसे इनकार है। जनसंख्याकी अतिवृद्धि अभीतक असिद्ध है। मेरी रायमें तो जमीनका वन्दोवस्त और वँटवारा ठीक तौरपर हो जाय, खेतीका ढंग सुधर जाय और कोई सहायक धंधा उसके साथ जोड़ दिया जाय तो यह देश आज भी दूनी आवादीके भरण-पोषणका भार उठा सकता है। इस देशमें जनन-निरोधका प्रचार करनेवालोंका साथ जो मैं दे रहा हूं वह महज उसकी वर्तमान राजनीतिक स्थितिके खयालसे।

मैं यह जरूर कहता हूं कि सन्तानकी आवश्यकता न रह जानेपर लोगोंको अपनी काम-वासनाकी तृप्ति वंद कर देनी चाहिए। संयमका उपाय लोकप्रिय और प्रभावकर वनाया जा सकता है। शिक्षित वर्गने कभी उसे ठीक तौरसे आजमाया नहीं। संयुक्त परिवारकी प्रथाकी वदौलत इस वर्ग कुटुम्ब-वृद्धिका वोझ अभी महसूस ही नहीं किया। जो कर रहे हैं उन्होंने प्रश्नके नैतिक पहलुओंपर कभी विचार नहीं किया। ब्रह्मचर्यपर जहां-तहां दो-चार व्याख्यान हो जानेके सिवा, खासकर वच्चोंकी अनिष्ट वाढ़ रोकनेके ही उद्देश्यसे, लोगोंको संयमकी शिक्षा देनेके लिए कोई व्यवस्थित प्रचार नहीं किया गया। उलटे यह वहम अव भी वहुतोंमें वना हुआ है कि अधिक वाल-वच्चोंका होना सौभाग्यका चिह्न है। धर्मका उपदेश करनेवाले आम तौरपर यह उपदेश नहीं देते कि कुछ विशेष अवस्थाओंमें सन्तानोत्पत्ति

रोकना भी वैसा ही धर्म होता है जैसा दूसरी अवस्थाओंमें संतान उत्पन्न करना।

मुझे ऐसी शंका होती है कि जनन-निरोधके हिमायती इस बातको पक्की मान लेते हैं कि काम-वासनाकी तृप्ति जीवन-धारणके लिए आवश्यक और इष्ट कार्य है। उन्हें स्त्रियोंके लिए चिन्ता प्रकट करते देखकर तो बड़ी दया आती है। मेरी रायमें बनावटी साधनोंसे गर्भ-निरोधके समर्थनमें स्त्रीके हितकी दलील देना उसका अपमान करना है। पुरुषकी कामुकता उसे यों ही काफी नीचे घसीट लाई है, अब कृत्रिम साधनोंका प्रचार—प्रचारकोंकी नीयत कितनी ही अच्छी क्यों न हो—उसे और नीचे गिराये बिना न रहेगा। मैं जानता हूं कि कुछ नई रोशनीवाली स्त्रियां भी इन साधनोंका समर्थन कर रही हैं। पर मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि नारी-जातिका बहुत बड़ा भाग उन्हें अपने गौरवकी हानि करनेवाला मानकर ठुकरा देगा। पुरुषको सचमुच नारी-जातिके भलेकी चिन्ता है तो उसे चाहिए कि अपनी वासनाको वशमें करे। स्त्री उसे ललचाती नहीं। पुरुष आक्रान्ता होता है, इसलिए वस्तुतः वही सच्चा मुजरिम और ललचानेवाला है।

कृत्रिम साधनोंके समर्थकोंसे मेरा साग्रह अनुरोध है कि वे अपने प्रचारके नतीजोंपर गौर करें। इन उपायोंके अधिक उपयोगका फल होगा विवाहके बंधनका टूट जाना और स्वच्छन्द प्रेमकी बाढ़। अगर पुरुषके लिए केवल वासनाकी तृप्तिके लिए ही संभोग करना जायज हो सकता है तो वह उस दशामें क्या करेगा जब उसे लंबे अरसे तक घरसे दूर रहना पड़े, या वह लंबी लड़ाईमें सैनिकके रूपमें काम कर रहा हो, या विधुर हो गया हो, या पत्नी इतनी बीमार हो कि अगर उसे संभोगकी इजाजत दे तो कृत्रिम साधनोंसे काम लेते हुए भी उसके स्वास्थ्यकी हानि हुए बिना न रहे?

पर एक दूसरे सज्जन लिखते हैं—

"जनन-नियंत्रणके विषयमें 'यंग इंडिया'के हालके अंकमें आपका जो लेख निकला है उसके संबन्धमें मेरा नम्र निवेदन है कि कृत्रिम साधनोंको हानिकर बताकर आप दावेको सबूत मान लेते हैं। पिछले सार्वभौम जनन-नियंत्रण सम्मेलन (लंदन, १९२२) की गर्भ-निरोध-परिषद्ने नीचे लिखे

आशयका प्रस्ताव स्वीकार किया था। इस प्रस्तावके विरोधमें उपस्थित १६४ डाक्टरोंमेंसे केवल तीनने हाथ उठाये थे—

"पांचवें सार्वभौम जनन-नियंत्रण-सम्मेलनके चिकित्सक सदस्योंकी इस बैठककी रायमें गर्भ-निरोधके स्वास्थ्य-नियमोंके अविरोधी उपायोंके द्वारा जनन-निरोध शरीरशास्त्र, कानून और नीति-शास्त्र तीनोंकी दृष्टिसे गर्भ-पातसे सर्वथा भिन्न वस्तु है। उसका यह भी कहना है कि गर्भ-निरोधके उत्तम उपाय और साधन स्वास्थ्यकी हानि करनेवाले हैं या बांझपन पैदा करते हैं, इसका कोई प्रमाण नहीं है।"

"चिकित्सा-शास्त्रके पंडित इतने स्त्री-पुरुषोंकी, जिनमें से कुछ दुनियाके सबसे बड़े डाक्टरोंमेंसे हैं, राय मेरी समझसे कलमके एक फर्राटेसे नहीं काटी जा सकती। आप कहते हैं 'कृत्रिम साधनोंके उपयोगका अनिवार्य परिणाम मानसिक दुर्बलता और नाड़ी-मण्डलका शिथिल हो जाना है'—" वह 'अनिवार्य' क्यों है ? मैं यह कहनेका साहस करता हूं कि अज्ञानवश हानिकर साधनोंके इस्तैमालसे भले ही ऐसा होता हो, पर आधुनिक वैज्ञानिक साधनोंके व्यवहारसे इस तरहकी कोई हानि कदापि नहीं होती। यह तो इस बातकी एक और दलील है कि गर्भ-निरोधकी समुचित विधि उन सब लोगोंको, जिन्हें उनकी जरूरत हो सकती है, अर्थात् सभी वयःप्राप्त स्त्री-पुरुषोंको सिखा दी जानी चाहिए। आप इन विधियोंको बनावटी कहकर उनकी निन्दा करते हैं, फिर भी कहते हैं कि डाक्टर-वैद्य इन्द्रिय-संयमके उपाय ढूंढें। मैं आपका मतलब ठीक तरहसे समझ नहीं पाता; पर चूंकि आप डाक्टर-वैद्योंकी बात कहते हैं, इसलिए पूछता हूं कि उनके ढूंढे हुए उपाय भी तो उतने ही बनावटी, अप्राकृतिक होंगे ? आप फर्माते हैं, 'समागमका उद्देश्य सुख-प्राप्ति नहीं, सन्तानोत्पादन है। यह उद्देश्य किसका है ?' ईश्वरका ? ऐसा है तो उसने काम-वासनाकी सृष्टि किसलिए की ? आप यह भी कहते हैं कि 'प्रकृति दया-माया-रहित है और अपना कानून तोड़नेवालेसे पूरा बदला लेती है।' पर प्रकृति अन्ततः व्यक्ति नहीं है, जैसा कि ईश्वरके विषयमें माना जाता है, और किसीके नाम फरमान नहीं निकालती। प्रकृतिके राजमें कर्मका फल अवश्य मिलता है। कुछ कर्मोंको हम अच्छा कहते

हैं, कुछको बुरा। बनावटी साधनोंको बरतनेवाले भी उसी तरह अपने कर्मका फल भुगतते हैं जिस तरह उनसे काम न लेनेवाले अपने कर्मोंका भोगते हैं। अतः जबतक आप यह साबित न कर दें कि बाह्य साधन और विधियां हानिकारक हैं तबतक आपकी दलीलका कुछ अर्थ नहीं होता। अपने अनुभवके बलपर मैं कह सकता हूं कि ये चीजें बुरी नहीं हैं, बशर्ते कि ठीक तौरसे काममें लाई जायं। किसीका काम भला या बुरा होनेका फैसला उसके फल देखकर ही किया जा सकता है, अनुमान-परम्पराके सहारे नहीं।

"सन्तति-नियमका जो रास्ता आप बताते हैं माल्थसने भी उसपर चलनेकी सलाह दी थी; पर आप जैसे दस-बीस विशिष्ट पुरुषोंको छोड़कर उसपर चलना और किसीके बसकी बात नहीं। ऐसे उपाय बतानेसे क्या लाभ जो काममें लाये ही न जा सकें? ब्रह्मचर्यकी महिमा बहुत बढ़ाकर गाई जाती है। वर्तमान युगके चिकित्सा-शास्त्रके प्रामाणिक पंडित (मेरा मतलब उन लोगोंसे है जो इस मसलेको धर्मकी ऐनकसे नहीं देखते) मानते हैं कि २२-२३ की उम्रके बाद संभोग न करनेसे निश्चित रूपसे हानि होती है। सन्तानकी कामनाको छोड़कर और किसी उद्देश्यसे किये गए समागमको आप जो पाप मानते हैं इसका कारण धर्मकी ओर आपका अनुचित झुकाव है। फलकी गारंटी पहलेसे तो कोई दे नहीं सकेगा, इसलिए आप हर आदमी-को या तो पूर्ण ब्रह्मचर्य-धारणका आदेश देते हैं या पापकी जोखिम उठानेका। शरीर-शास्त्र हमें यह शिक्षा नहीं देता, और लोगोंसे यह कहनेके दिन लद चुके कि वे विज्ञानकी उपेक्षा करके किसी सन्त-महात्माके आदेशका अंधानु-सरण करें।"

इस पत्रके लेखकको अपने मतका अटल आग्रह है। मैं समझता हूं, यह दिखानेके लिए मैंने काफी मिसालें सामने रख दीं कि अगर हमें विवाहको धर्म-बंधन मानना और उस बंधनकी पवित्रताको बनाये रखना है, तो हमें भोगको नहीं बल्कि संयमको जीवनका नियम मानना होगा। मैंने दावेको सबूत—विवादग्रस्त बातको सिद्ध—नहीं मान लिया है, क्योंकि मैं तो कहता हूं कि जनन-निरोधके बाहरी उपाय कितने ही अच्छे क्यों न हों, पर हैं वे हानिकर ही। हो सकता है, वे स्वयं निर्दोष हों और केवल इसलिए

हानिकारक हों कि वे सोई हुई काम-वासनाको जगाते हैं, जिसकी भूख भोजनसे शांत होनेके बदले और भड़कती जाती है। जिस मनको यह माननेकी आदत लग गई हो कि अपनी काम-वासनाकी तृप्ति केवल जायज ही नहीं, इष्ट भी है। वह जी भरकर विषय-सुख भोगेगा और अन्तमें मनसे इतना निर्बल हो जायगा कि वासनाओंको रोकनेकी उसमें शक्ति ही न रह जायगी। मैं मानता हूं कि एक बारके संभोगका अर्थ भी उस अनमोल शक्तिका क्षय है जो स्त्री-पुरुष सबके तन-मन और आत्माका बल-तेज बनाये रखनेके लिए परमावश्यक है। इस प्रसंगमें मैं आत्माका नाम ले रहा हूं। पर अबतक मैंने इस चर्चासे उसको जान-बूझकर बाहर रखा था, क्योंकि इसकी गरज महज अपने पत्र-लेखकोंकी दलीलोंका जवाब देना है, जिन्हें आत्माके होने न होनेका कोई खयाल ही नहीं दिखाई देता। विवाहके अतिरेकसे पीड़ित और बल-तेज गँवाये हुए भारतको बनावटी साधनोंकी सहायतासे काम-वासनाकी परितृप्तिकी नहीं, बल्कि पूर्ण संयमकी शिक्षाकी आवश्यकता है, और किसी विचारसे न सही तो केवल इसलिए कि उसका गया हुआ बल-तेज उसे फिर प्राप्त हो जाय। नीति-नाशक दवाओंके विज्ञापन, जो हमारे पत्र-पत्रिकाओंके लिए कलंकरूप हो रहे हैं, जनन-निरोधके हिमायतियों-के लिए चेतावनी होने चाहिएं। दिखाऊ लज्जा या शालीनता मुझे इस विषयकी विस्तृत चर्चा करनेसे नहीं रोक रही है, बल्कि इस बातका निश्चित ज्ञान उससे रोक रहा है कि हमारे देशके तन-मनसे बे-दम नौजवान उन देखनेमें सही-सी लगनेवाली दलीलोंके सहजमें शिकार हो जाते हैं जो असंयत विषय-भोगके पक्षमें दी जाती हैं।

दूसरे पत्र-लेखकने अपने पक्षकी पुष्टिमें जो डाक्टरी सर्टिफिकेट पेश किया है उसका जवाब देना अब मुझे जरूरी नहीं मालूम होता। मैं न यह कहता हूं और न इससे इन्कार ही करता हूं कि कृत्रिम साधनोंके व्यवहारसे जननेन्द्रियोंकी हानि होती या बांझपन पैदा होता है। पर अपनी ही स्त्रीके साथ अति विषय-भोगके फलसे जो सैकड़ों युवकोंके जीवनका नाश होते मैंने अपनी आंखों देखा है, बड़े-से-बड़े डाक्टरोंकी पलटन भी उसे काट नहीं सकती।

पहले लेखकने जो बनावटी दांतकी दलील दी है वह मेरी रायमें यहां नहीं लगती। बनाये हुए दांत निस्सन्देह बनावटी और अप्राकृतिक चीज हैं, पर उनसे एक आवश्यकताकी पूर्ति हो सकती है। मगर जनन-निरोधके कृत्रिम साधन तो उस आदमीका चूरन फांकना है जो अपनी भूख मिटानेके लिए नहीं बल्कि जीभको तृप्त करनेके लिए खाना चाहता हो। स्वादके लिए भोजन भी वैसा ही पाप है जैसा केवल भोग-सुखके लिए संभोग करना।

तीसरे पत्रसे हमें एक जानने लायक बात मालूम होती है—"जनन-नियंत्रणका प्रश्न दुनियाकी सभी सरकारोंको परेशान कर रहा है। यह तो आप जानते ही होंगे कि अमरीकाकी सरकार इसके प्रचारकी विरोधिनी है। निश्चय ही आपने यह भी सुन रखा होगा कि एक पूर्वीय साम्राज्य जापानने इन साधनोंके प्रचार-व्यवहारको आम इजाजत दे रखी है। एक हर हालतमें गर्भ-निरोधका निषेध करता है, चाहे वह कृत्रिम साधनोंसे किया जाय या प्राकृतिक साधनोंसे, दूसरा उसका पोषक प्रचारक है। दोनोंकी वृत्तियोंके कारण सर्वविदित हैं। मेरी समझसे अमरीकाके रुखमें कोई ऐसी बात नहीं जिसकी सराहना की जाय। पर जापानका कार्य क्या अधिक निंदनीय है? उसे कम-से-कम वस्तुस्थितिका सामना करनेका यश तो मिलना ही चाहिए। वह अपनी आबादीका बढ़ना रोकनेके लिए लाचार है। मनुष्य-स्वभावको भी उसे, वह आज जैसा है वैसा, मानना ही होगा। ऐसी दशामें क्या जनन-निरोध उस अर्थमें, जिसमें पश्चिममें उसका ग्रहण होता है, उसके लिए एक-मात्र मार्ग नहीं? आप कहेंगे, 'हर्गिज नहीं।' पर क्या मैं आपसे पूछ सकता हूं कि आप जो रास्ता बताते हैं वह व्यवहार्य है? वह आदर्श भले ही हो, पर क्या उसपर चला जा सकता है? क्या जन-समाजसे संभोग-सुखके कहने लायक त्यागकी आशा रखी जा सकती है? थोड़ेसे गौरवशाली पुरुषोंके लिए जो संयम और ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं वह आसान हो सकता है? पर क्या यह रास्ता इस योग्य है कि इसके प्रचारके लिए सार्वजनिक आन्दोलन किया जाय? और हिन्दुस्तानकी हालत ऐसी है कि यहां देशव्यापी आम आन्दोलन होनेसे ही काम हो सकता है।"

अमरीका और जापानकी स्थितिसे अपनी अनभिज्ञता मुझे स्वीकार करनी ही होगी। जापान जनन-निरोधका प्रचार क्यों कर रहा है इसका मुझे पता नहीं। लेखककी बताई हुई बातें अगर सही हैं और अप्राकृतिक उपायोंसे जनन-निरोध जापानमें आम है तो मैं यह कहनेका साहस करता हूं कि यह श्रेष्ठ राष्ट्र अपने नैतिक नाशकी ओर बहुत तेजीसे बढ़ रहा है।

हो सकता है, मेरी राय बिलकुल गलत हो, मेरे सिद्धान्त गलत तथ्योंके आधारपर स्थिर किये गए हों। पर बनावटी उपायोंके समर्थक थोड़ा धीरज रखें। हालकी मिसालोंके सिवा उनके पास और कोई तथ्य-सामग्री नहीं है। निश्चय ही जो प्रणाली देखनेमें मनुष्यकी नीतिवृत्तिकी इतनी विरोधिनी जान पड़ती है उसके बारेमें निश्चयपूर्वक कुछ कहना अभी अति असामयिक है। अपनी जवानीके साथ खिलवाड़ करना आसान है, पर इस खिलवाड़के कुपरिणामोंसे बचना कठिन है।

## : ९ :

# गुह्य प्रकरण

जिन पाठकोंने आरोग्यके प्रकरण ध्यानपूर्वक पढ़े हैं उनसे मेरी प्रार्थना है कि इस प्रकरणको और भी ध्यानसे पढ़ें, उसपर खूब विचार करें। अभी दूसरे प्रकरण लिखनेको बाकी हैं और मुझे आशा है कि वे उपयोगी भी होंगे। पर इस विषयपर दूसरा कोई भी प्रकरण इतने महत्त्वका न होगा। मैं पहलेसे बतला चुका हूं कि इन प्रकरणोंमें मैंने एक भी बात ऐसी नहीं लिखी है जिसको मैंने खुद अनुभव न किया हो और जिसपर मेरा दृढ़ विश्वास न हो।

आरोग्यकी बहुत-सी कुंजियां हैं और सभी बहुत जरूरी हैं, पर उनकी मुख्य कुंजी ब्रह्मचर्य है। अच्छी हवा, अच्छा पानी, अच्छी खुराकसे हम आरोग्य पा सकते हैं। पर हम जितना पैसा कमायें उतना सब उड़ा दें तो हमारे पास कुछ बचेगा नहीं। वैसे ही हम जितनी तंदुरुस्ती कमायें उतनी सब खर्च कर डालें तो हमारे पास पूंजी क्या होगी? स्त्री-पुरुष दोनोंको आरोग्य-रूपी धनका संचय करनेके लिए ब्रह्मचर्य-धारणकी पूरी आवश्यकता है। इसमें किसीको भी शक-शुबहा न होना चाहिए। जिसने अपने वीर्यका संचय किया है वही वीर्यवान्, बलवान कहा और माना जा सकता है।

पूछा जायगा, ब्रह्मचर्य है क्या चीज? पुरुष स्त्रीका और स्त्री पुरुषका भोग न करे, यही ब्रह्मचर्य है। भोग न करनेका अर्थ इतना ही नहीं है कि एक दूसरेको भोगकी इच्छासे स्पर्श न करे बल्कि मन इसका विचार भी न करे। इसका सपना भी नहीं होना चाहिए। पुरुष स्त्रीको देखकर पागल न हो, स्त्री पुरुषको देखकर। प्रकृतिने जो गुह्य शक्ति हमें दे रखी है, हमें उचित है कि उसको अपने शरीरमें ही बनाये रखें और उसका उपयोग केवल तनको ही नहीं, मन, बुद्धि और धारणा-शक्तिको भी अधिक स्वस्थ-सबल बनानेमें करें।

पर अब देखिये, हमारे आस-पास कौन-सा दृश्य दिखाई दे रहा है ? छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष सभी इस मोहमें डूब रहे हैं। ऐसे समय हम पागल-से हो जाते हैं। हमारी अकल ठिकाने नहीं रहती। काम हमें अंधा बना देता है। कामके वशमें हुए स्त्री-पुरुषों और लड़के-लड़कियोंको मैंने बिलकुल पागल बन जाते देखा है। मेरा अपना अनुभव भी इससे भिन्न नहीं है। जब-जब मेरी वह दशा हुई है मैं अपनी सुध-बुध खो बैठा हूं। यह चीज है ही ऐसी। रत्ती-भर रति-सुखके लिए हम मन भरसे अधिक शक्ति पल भरमें गँवा बैठते हैं। जब हमारा नशा उतरता है तो हम रंक बन जाते हैं। अगले दिन सबेरे हमारा शरीर भारी रहता है। हमें सच्चा चैन नहीं मिलता। हमारा तन शिथिल होता है और मन बेठौर-ठिकाने हो जाता है। इन सबको ठिकाने लगानेके लिए हम सेरों दूध चढ़ाते, रस-भस्म फांकते, 'याकूती' गोलियां खाते और वैद्योंके पास जा-जाकर 'पुष्टई' मांगा करते हैं। क्या खानेसे काम बढ़ेगा, इसकी खोजमें लगे रहते हैं। यों दिन जाते हैं और ज्यों-ज्यों बरस बीतते हैं हमारा शरीर और बुद्धि शिथिल होती जाती है और बुढ़ापेमें अक्ल सठियाई हुई दिखाई देती है।

पर वस्तुतः ऐसा होना ही न चाहिए। बुढ़ापेमें बुद्धि मंद होनेके बदले और तीक्ष्ण होनी चाहिए। हमारी स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि इस देहमें मिले हुए अनुभव हमारे और दूसरेके लिए लाभदायक हो सकें और जो ब्रह्मचर्यका पालन करता है उसकी ऐसी स्थिति रहती भी है। उसे मृत्युका भय नहीं रहता और मरते समय भी वह भगवान्‌को नहीं भूलता और न बेकारकी हाय-हाय करता है। मरणकालके उपद्रव भी उसे नहीं सताते और वह हंसते-हंसते यह देह छोड़कर मालिकको अपना हिसाब देने जाता है। जो इस तरह मरे वही पुरुष और वही स्त्री है। उसीने सच्चे स्वास्थ्यका सम्पादन किया, यह माना जायगा।

हम साधारणतः यह नहीं सोचते कि दुनियामें जो इतना भोग-विलास, डाह, वैर, बड़प्पनका गर्व, आडंबर, क्रोध, अधीरता आदि है उसकी जड़ हमारे ब्रह्मचर्य भंग करनेमें ही है। यों हमारा मन हाथमें न रहे और हम रोज एक या अनेक बार बच्चेसे भी अधिक नासमझ हो जायं तो फिर

जानकर या अनजानमें कौन-कौनसे पाप हम नहीं करेंगे, कौन-सा घोर कर्म है जिसे करनेमें हमें अटक होगी ?

पर ऐसे लोग भी हैं जो पूछेंगे—ऐसा ब्रह्मचर्य पालन करनेवालेको किसने देखा है ? सभी ऐसे ब्रह्मचारी हो जायं तो यह दुनिया कितने दिन टिकेगी ? इस प्रश्नपर विचार करनेमें धर्मकी चर्चा भी उठ सकती है। अतः उसके उस अंगको छोड़कर मैं केवल लौकिक दृष्टिसे उसपर विचार करूंगा। मेरी रायमें यह दोनों सवाल हमारे कायरपन और डरपोकपनसे पैदा होते हैं। हम ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहते नहीं, इसलिए उससे भागनेके लिए बहाने ढूंढ़ते रहते हैं। ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले इस दुनियामें बहुतेरे पड़े हैं। पर वे गली-गली मारे-मारे फिरें तो उनका मूल्य ही क्या होगा ? हीरा पानेके लिए हजारों मजदूरोंको धरतीके पेटमें समा जाना पड़ता है। इसके बाद भी जब धूल-कंकड़ोंका पहाड़ धो टाला जाता है तब कहीं मुट्ठीभर हीरा हाथ लगता है। तब सच्चे ब्रह्मचर्यरूपी हीरेकी तलाशमें कितनी मेहनत करनी होगी, इसका जवाब हर आदमी त्रैराशिक करके निकाल सकता है। ब्रह्मचर्यके पालनसे सृष्टिकी समाप्ति हो जाय तो इससे अपने रामको क्या लेना-देना है ? हम कुछ ईश्वर नहीं हैं। जिसने सृष्टि रची है वह खुद उसकी फिक्र कर लेगा। दूसरे भी उसका पालन करेंगे या नहीं यह सवाल तो हमें करना ही न चाहिए। हम जब वाणिज्य-व्यापार, वकालत आदि करने लगते हैं तब तो यह नहीं पूछते कि अगर सभी वकील-व्यापारी हो जायंगे तो क्या होगा ? जो ब्रह्मचर्यका पालन करेगा उस पुरुष या स्त्रीको कुछ दिन बाद इस सवालका जवाब अपने-आप मिल जायगा। उसे अपने-जैसे दूसरे मिल जायंगे और सभी ब्रह्मचारी हो जायं तो सृष्टि कैसे चलेगी यह भी दिनके उजालेकी तरह स्पष्ट हो जायगा।

संसारी मनुष्य इन विचारोंको किस तरह अमलमें ला सकता है ? विवाहित स्त्री-पुरुष क्या करें ? बाल-बच्चे वाले क्या करें ? जो कामको वशमें न रख सकें वे क्या करें ?

हमारे लिए अच्छी-से-अच्छी स्थिति क्या हो सकती है, यह हमने देख लिया। इस आदर्शको हम अपने सामने रखें तो उसकी हूबहू या उससे

कुछ उतरती नकल उतार सकेंगे। हम बच्चेको अक्षर लिखना सिखाने लगते हैं तो सुन्दर-से-सुन्दर अक्षरके नमूने उसके सामने रखते हैं। बच्चा अपनी शक्तिके अनुसार उनकी पूरी-अधूरी नकल उतारता है। इसी तरह अखंड ब्रह्मचर्यका आदर्श अपने सामने रखकर हम उसके अनुकरणका यत्न कर सकते हैं। ब्याहकर लिया है तो क्या हुआ। प्रकृतिका नियम यही है कि स्त्री-पुरुषको जब सन्तानकी चाह हो तभी वे ब्रह्मचर्यका भंग करें। जो दम्पती इसका ध्यान रखते हुए दो-तीन या चार-पांच वरसमें एक बार ब्रह्मचर्यको तोड़ेंगे वे बिलकुल पागल नहीं बन जायंगे और उनके पास वीर्यरूपी पूंजी भी काफी जमा रहेगी। ऐसे स्त्री-पुरुष तो मुश्किलसे ही दिखाई देते हैं जो केवल सन्तानकी कामनासे ही सम्भोग करते हों। हजारों-लाखों जन तो अपनी काम-वासनाकी तृप्ति चाहते हैं और उसके लिए ही सम्भोग करते हैं। फल यह होता है कि उन्हें अपनी इच्छाके विरुद्ध सन्तानकी प्राप्ति होती है। विषय-सुख भोगनेमें हम इतने अन्धे हो जाते हैं कि आगे-पीछे कुछ सुझाई ही नहीं देता। इस विषयमें स्त्रीकी बनिस्वत पुरुष अधिक अपराधी होता है। वह इतना कामांध होता है कि स्त्रीमें गर्भ-धारण और बच्चेके पालन-पोषणका बोझ उठानेकी शक्ति है या नहीं, इसका उसे खयाल तक नहीं रहता।

पश्चिमके लोग तो इस विषयमें सीमाका अतिक्रमण कर गये हैं। वे इसके लिए अनेक उपाय करते हैं कि वे विषय-सुख तो जी भरकर भोगते रहें पर बच्चोंका बोझ उन्हें न उठाना पड़े। इन उपायोंपर पुस्तकें लिखी गई हैं और गर्भ-निरोधके साधन जुटाना एक रोजगार बन गया है। हम इस पापसे अभी तो मुक्त हैं; पर अपनी पत्नियोंपर गर्भ-धारणका बोझ लादते हमें तनिक भी आगा-पीछा नहीं होता, न इसकी ही परवाह होती है कि हमारी सन्तान निर्बल, निर्बुद्धि, वीर्यहीन और नपुंसक होगी। उलटे घरमें बच्चा पैदा होता है तो इसे भगवानकी दया मानते और उसे धन्यवाद देते हैं। निर्बल, निर्जीव, विषयी अपंग सन्तान हो इसे हम ईश्वरका कोप क्यों न मानें? बारह बरसका बालक बाप बने इसमें किस बातकी खुशी मनायें, किस बातका उछाव-बधाव करें? बारह वर्षकी बच्चीका माता बनना ईश्वरका महाकोप क्यों न माना जाय? साल-दो-सालके लगाये

हुए पेड़में फल आयें तो उसकी बाढ़ मारी जायगी, यह हम जानते हैं और वह इतनी जल्दी न फले इसका उपाय करते हैं। पर बाल्यवधूके बालक वरसे सन्तान उत्पन्न हो तो हम गाते-बजाते और दावतें देते हैं? क्या यह सामने खड़ी दीवारको न देखना नहीं है?

हिन्दुस्तानमें या दुनियामें और कहीं निर्वीर्य-निकम्मे आदमी कीड़ों-मकोड़ोंकी तरह पैदा हों तो इससे हिन्दुस्तान या दुनियाका उद्धार होगा? एक दृष्टिसे तो पशु ही हमसे अच्छे हैं। हमें जब उनसे बच्चा पैदा कराना होता है तभी हम नर-मादाका संयोग कराते हैं। संयोगके बाद गर्भ-काल और प्रसवके बाद जबतक बच्चेका दूध नहीं छूटता और वह बड़ा नहीं हो जाता तबतकका काल अति पवित्र माना जाना चाहिए। इस कालमें स्त्री-पुरुष दोनोंको ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए। पर इसके बदले हम क्षण-भर भी सोचे-विचारे बिना अपना काम किये जाते हैं। इतना रोगी हो गया है हमारा मन! इसको कहते हैं असाध्य रोग। यह रोग हमें मौतके पास पहुँचा देता है; और मौत नहीं आती तबतक हम पागलकी तरह भरमते रहते हैं।

अतः विवाहित स्त्री-पुरुषोंका फर्ज है कि अपने विवाहका गलत अर्थ न लगाकर सही अर्थ लगायें और जब उन्हें सचमुच सन्तानकी इच्छा और आवश्यकता हो तभी उत्तराधिकारीकी प्राप्तिके उद्देश्यसे समागम करें। हमारी आजकी दयनीय दशामें यह होना बहुत ही कठिन है। हमारी खुराक, हमारी रहन-सहन, हमारी बातचीत, हमारे आसपासके दृश्य सभी हमारी विषय-वासनाको जगानेवाले हैं। अफीमके नशेकी तरह विषय-वासना हमारे सिरपर सवार रहती है। ऐसी स्थितिमें विचार करके पीछे हटना कैसे हो सकेगा? पर जो होना चाहिए वह कैसे होगा, यह पूछनेवालोंकी शंकाका जवाब इस लेखमें नहीं मिलेगा। यह तो उन्हींके लिए लिखा जा रहा है जो विचार करके, जो करना चाहिए, उसे करने उसकी कोशिश करनेको तैयार हैं। जो अपनी मौजूदा हालतसे संतोष मान बैठे हैं उन्हें तो इसका पढ़ना भी भारी लगेगा। पर जिन्हें अपनी दीन दशाका पता लग गया है और उससे कुछ ऊब भी उठे हैं उन्हींकी मदद करना इस लेखके लिखे जानेका हेतु है।

ऊपर जो-कुछ लिखा गया है उससे हम यह नतीजा निकाल सकते हैं कि जो लोग अवतक अविवाहित हैं उन्हें इस कठिन कालमें व्याह करना ही न चाहिए। और अगर व्याह किये विना चले ही नहीं तो जितनी देरसे कर सकें, करें। २५-३० वर्ष तक व्याह न करनेकी तो युवकोंको प्रतिज्ञा ही कर लेनी चाहिए। इस व्रतसे स्वास्थ्यके अतिरिक्त जो अन्य अनेक लाभ होंगे उनका विचार हम यहां नहीं कर सकते। पर हर आदमी वे लाभ ले सकता है।

जो मां-वाप इस लेखको पढ़ें उनसे मेरा कहना है कि जो लोग वचपन ही में अपने वेटे-वेटियोंका व्याह या सगाई करके उन्हें वेच देते हैं वे उनका घोर अहित करते हैं। ऐसा करके वे अपने वच्चोंका हित करनेके वदले अपने ही अन्धे स्वार्थका साधन करते हैं। उन्हें अपना वड़प्पन दिखाना है, जाति-विरादरीमें नाम पैदा करना है, वेटेका व्याह करके हौसला निकालना है। उन्हें वेटेका हित देखना हो तो उसकी पढ़ाई-लिखाईपर निगाह रखें, उसकी सेवा-जतन करें, उसकी देहको दृढ़-पुष्ट वनानेका उपाय करें। इस कठिन कालमें वचपनमें ही उनके गलेमें गृहस्थीका जुआ डाल देनेसे वढ़कर उनका अहित और क्या हो सकता है?

अन्तमें स्वास्थ्यका नियम यह भी है कि पति-पत्नीमेंसे किसी एककी मृत्यु हो जाय तो दूसरा इसके वाद विधुरत्व या वैधव्य-व्रतका पालन करे। कितने ही डाक्टर कहते हैं कि जवान स्त्री-पुरुषको वीर्यपातका मौका मिलना ही चाहिए। दूसरे कितने ही डाक्टर कहते हैं कि किसी भी हालतमें वीर्य-पात-आवश्यक नहीं। जव डाक्टर आपसमें यों लड़ रहे हों तव यह मानकर कि डाक्टर हमारे मतका समर्थन करते हैं हम विषय-भोगमें लीन रहें, यह कदापि न होना चाहिए। मेरे अपने और जिन दूसरोंके अनुभव मैं जानता हूं उनके आधारपर मैं निस्संकोच कह सकता हूं कि स्वास्थ्य-रक्षाके लिए संभोगकी आवश्यकता नहीं है, यही नहीं, उससे—वीर्य-व्ययसे—स्वास्थ्यकी भारी हानि होती है। अनेक वरसोंमें कमाई हुई तन-मनकी शक्ति एक वार-के वीर्य-पातसे भी इतना खर्च हो जाती है कि उस छीजको भरनेके लिए वहुत समय चाहिए। और इतना वक्त लगाकर भी हम अपनी पहली

स्थितिको तो पहुँच ही नहीं सकते। टूटे हुए शीशेको मसालेसे जोड़कर आप उससे काम भले ही ले लें, पर वह होगा तो टूटा हुआ ही।

वीर्यकी रक्षाके लिए स्वच्छ वायु, स्वच्छ जल, स्वच्छ आहार और स्वच्छ विचारकी पूरी आवश्यकता है। इस प्रकार सदाचारका स्वास्थ्यके साथ बहुत नजदीकका नाता है। पूर्ण सदाचारी पुरुष ही पूर्ण स्वास्थ्यका सुख भोग सकता है। 'जगें तबसे सवेरा' मानकर जो लोग ऊपर लिखी बातोंपर भरपूर विचार करके उनमें दी हुई सलाहोंपर अमल करेंगे उन्हें खुद उनकी सचाईका अनुभव हो जायगा। जिसने थोड़े दिन ब्रह्मचर्यका पालन किया होगा वह भी अपने तन और मन दोनोंका बल बढ़ा हुआ पायेगा। और यह पारस-मणि एक बार उसके हाथ लगी तो वह यावज्जीवन उसको बहुत संभालकर रखेगा। जरा भी चूकेगा तो तुरंत उसे पता चल जायगा कि उसने भारी भूल की। मैंने तो ब्रह्मचर्यके अगणित लाभ जान और समझ लेनेके बाद भी भूलें कीं और उनके कड़वे फल भी चख लिये हैं। चूकके पहले अपने मनकी जो भव्य दशा थी और उसके बाद जो दीन दशा हो गई, दोनोंकी तसवीरें अब भी मेरी आंखोंके सामने आया करती हैं। पर अपनी चूकोंसे ही मैं इस पारस-मणिका मूल्य जान सका। अब भी ब्रह्मचर्यका अखंड पालन कर सकूंगा कि नहीं यह तो नहीं जानता, पर भगवान्‌की दया होनेसे पाल सकनेकी आशा रखता हूं। उससे मेरे तन-मनका जो उपकार हुआ है वह मैं देख सकता हूं। मैं बचपनमें ब्याहा गया। बचपनमें ही कामसे अन्धा बना। बचपनमें ही बाप बना और बहुत बरसोंके बाद जाग सका। जागकर देखा तो जान पड़ा, जैसे महारात्रिका सवेरा हुआ हो। मेरी भूलों और अनुभवोंसे अगर एक भी पाठक चेत गया और उन भूलोंसे बचा तो मैं मान लूंगा कि यह प्रकरण लिखकर मैं कृतार्थ हो गया।

यह शिराशि बांधने लायक है। बहुतसे लोग कहते हैं और मैं खुद भी कहता हूं कि मुझमें भरपूर उत्साह है। मेरा मन तो निर्बल माना ही नहीं जाता। कितने ही लोग तो मुझे हठी मानते हैं। मेरे तन और मनमें रोगोंका बसेरा है फिर भी जिन लोगोंसे मेरा संग-साथ हुआ है उनकी तुलनामें मैं काफी तन्दुरुस्त माना जाता हूं। यह दशा तब है जब कमोवेश बीस वर्ष

भोग-रत रहनेके बाद मैं जाग पाया। तब अगर वे २० साल भी मैं बचा सका होता तो आज मैं कहां होता ? मैं मानता हूं कि वैसा हुआ होता तो आज मेरे उत्साहका पार न होता और जनताकी सेवामें या अपने स्वार्थके कामोंमें ही मैं इतना उत्साह दिखलाता कि मेरी बराबरी करनेवालेकी पूरी परीक्षा हो जाती। इतना सार मेरे खंडित ब्रह्मचर्यके उदाहरणमेंसे खींचा जा सकता है। तब जो अखंड ब्रह्मचर्यका पालन कर सकता है उसके शारीरिक, मानसिक और नैतिक बलको तो जिसने देखा है वही जान सकता है। उसका वर्णन नहीं हो सकता।

इस प्रकरणको पढ़नेवालोंने यह तो समझ ही लिया होगा कि जब मैंने विवाहितोंको ब्रह्मचर्य-धारणकी ओर जिनका घर उजड़ गया है उन्हें विधुर या विधवा बने रहकर ही जिंदगी बितानेकी सलाह दी है तब विवाहित या अविवाहित स्त्री या पुरुषको और कहीं अपनी काम-वासना तृप्त करनेका अवकाश तो हो ही नहीं सकता। परन्तु परस्त्री या वेश्यापर कुदृष्टि डालनेके जो घोर परिणाम होते हैं उनपर विचार करनेके लिए हम यहां नहीं रुक सकते। यह धर्म और नीति-तत्त्वका गम्भीर प्रश्न है। यहां तो इतना ही कहा जा सकता है कि परस्त्री-गमन और वेश्या-गमनसे आदमी गरमी-सूजाक जैसे रोगोंसे पीड़ित होता और सड़ता दिखाई देता है। प्रकृति इतनी दया करती है कि ऐसे स्त्री-पुरुषोंको अपने पापका फल तुरत मिल जाता है। फिर भी वे सोये ही रहते हैं और अपने रोगोंकी दवाकी खोजमें वैद्य-डाक्टरोंके यहां भटकते रहते हैं। परस्त्री-गमन न हो तो ५० फीसदी वैद्य-डाक्टर बेरोजगार हो जायंगे। इन रोगोंने मनुष्य-जातिको इस तरह जकड़ लिया है कि विचारशील डाक्टर भी कहते हैं कि परस्त्री-गमनकी बुराई समाजसे न गई तो हमारे लाख खोज करते रहनेपर भी मानव-जातिका नाश निश्चित है। इससे होनेवाले रोगोंकी दवाएं भी इतनी जहरीली हैं कि उनसे एक रोग जाता दिखाई देता है तो दूसरे देहमें डेरा डालते हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते हैं।

यह प्रकरण जितना सोचा था उससे अधिक लंबा हो गया। अतः अब विवाहित जनोंको ब्रह्मचर्य-पालनके उपाय बताकर इसे समाप्त करता

हूं। महज खुराक, हवा-पानीके नियमोंका पालन करके ही कोई विवाहित पुरुष ब्रह्मचर्य नहीं निभा सकता। उसे अपनी स्त्रीके साथ एकान्तमें मिलना-जुलना बंद करना होगा। थोड़ा विचार करनेसे हर आदमी देख सकता है कि संभोगके सिवा और किसी बातके लिए अपनी स्त्रीसे एकान्तमें मिलनेकी जरूरत नहीं होती। रातमें पति-पत्नीको अलग-अलग कमरोंमें सोना चाहिए। दिनमें दोनोंको अच्छे कामों और अच्छे विचारोंमें सदा लगे रहना चाहिए। जिनसे अपने सद्विचारको उत्तेजन मिले ऐसी पुस्तकें पढ़ें। ऐसे स्त्री-पुरुषोंके चरित्रोंका मनन करें और विषय-भोगमें दुःख-ही-दुःख है इसे सदा स्मरण रखें। संभोगकी इच्छा जब-जब हो तब-तब ठंडे पानीसे नहा लिया करें। शरीरमें रहनेवाली महाग्नि इससे और अच्छा रूप प्राप्त करेगी और स्त्री-पुरुष दोनोंके लिए उपकारक होकर उनके सच्चे सुखकी वृद्धि करेगी। यह बात है तो कठिन, पर कठिनाइयोंको जीतनेके लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है। जिसे सच्चा स्वास्थ्य भोगना हो उसे इस कठिनाईपर विजय प्राप्त करनी ही होगी।

: १० :

# सुधार या बिगाड़

एक भाई जिन्हें मैं अच्छी तरह जानता हूं, लिखते हैं:

"क्या प्रचलित नीति प्राकृतिक है ? यह प्रश्न मनमें वारंवार उठा करता है। आपने 'नीति-धर्म' लिखकर आजकी प्रचलित नीतिका समर्थन किया है। पर क्या यह नीति प्रकृति-प्रेरित है ? मुझे तो ऐसा लगता है कि यह अप्राकृतिक है। आजकी नीतिकी वदौलत ही तो मनुष्य विषय-भोगमें पशुसे भी अधिक अधम वन गया है। आजकी नीति-मर्यादामें विवाह-सम्बन्ध सन्तोषजनक शायद ही होता हो, होता ही नहीं कहूं तो भी गलत न होगा। जब व्याहका नियम न था तव प्रकृतिके अनुसार स्त्री-पुरुषका समागम होता था और वह सुखदायी होता था। जबसे नीतिके बंधन लगे तबसे तो यह समागम एक तरहकी व्याधि वन गया है जिसमें आज सारा जगत् ग्रस्त है और होता जा रहा है।

"फिर नीति कहें किसको ? एककी नीति दूसरेके लिए अनीति है। एक एक ही स्त्रीके साथ व्याह करना स्वीकार करता है, दूसरा अनेक पत्नियां करनेकी छूट देता है। कोई चाचा-मामाके वेटे-वेटीके साथ विवाह-सम्बन्ध त्याज्य मानता है, कोई इसकी इजाजत देता है। तब किसे नीति मानें ? मेरा तो कहना है कि व्याह एक सामाजिक विधान है, धर्मके साथ इसका कोई लगाव नहीं। अगले जमाने के महापुरुषोंने देश-कालके अनुसार नीति बना ली।

"अब आप देखें कि इस नीतिने दुनियाका किस तरह नाश किया है—

१. गरमी-सूजाक-जैसे रोग पैदा हुए। पशुओंमें इन बीमारियोंका पता नहीं है, इसलिए कि उनमें समागम प्रकृतिके नियमानुसार होता है।

२. भ्रूण-हत्या और वाल-हत्याएँ हुई, यह लिखते तो कलेजा कांप

उठता है। इस नीति-नियमके कारण ही कोमलहृदया माता क्रूर बनकर अपने ही हाथों, गर्भमें ही या गर्भसे बाहर आनेपर, अपने बच्चोंका वध करती है।

३. बाल-विवाह, बेमेल विवाह इत्यादि इच्छा-विरुद्ध समागम। इसी समागमकी बदौलत आज दुनिया, खासकर हिन्दुस्तान बल-वीर्यमें इतना रंक हो रहा है।

४. जन-जमीन-जरके झगड़ोंमें 'जन' (स्त्री) के लिए होनेवाले झगड़ेका स्थान पहला है। यह भी आज चलनेवाली नीतिकी ही देन है।

"इन चारके सिवा और बातें भी होंगी। तब मेरी दलील सही हो। तो क्या प्रचलित नीतिमें सुधार न होना चाहिए।

"आप ब्रह्मचर्यको मानते हैं सो तो ठीक है। पर ब्रह्मचर्य अपनी खुशीका होना चाहिए, जोर-जबर्दस्तीका नहीं। मगर हिंदू तो लाखों विधवाओंसे जबर्दस्ती ब्रह्मचर्य रखवाते हैं। इन विधवाओंका दुःख तो आप जानते हैं। इसकी बदौलत बाल-हत्याएं होती हैं, यह बात भी आपसे छिपी नहीं है। ऐसी दशामें उनके पुनर्विवाहके पक्षमें आप जबर्दस्त आन्दोलन चलायें तो क्या यह कम महत्त्वका कार्य होगा? फिर इस ओर जितना चाहिए उतना ध्यान आप क्यों नहीं देते?"

मैं समझता हूं, लेखकने इस लेखमें जो प्रश्न उठाये हैं वे केवल इसीलिए उठाये गये हैं कि मैं इस विषयपर कुछ लिखूं। कारण यह कि इसमें जिस पक्षका समर्थन किया गया है उस पक्षका समर्थन लेखक खुद करता होगा यह मैं नहीं जानता। पर इतना जानता हूं कि इस लेखमें जो प्रश्न आये हैं वे अब हिंदुस्तानमें भी उठने लगे हैं। इन विचारोंकी पैदाइश पश्चिममें हुई है। ब्याह दकियानूसी, जंगली, अनीति बढ़ानेवाली प्रथा है—यह माननेवालोंकी संख्या पश्चिममें पहले भी कुछ छोटी नहीं थी। अब तो शायद यह बढ़ती भी जा रही है। ब्याहको जंगली रिवाज माननेके लिए पश्चिममें जो दलीलें दी जाती हैं उन सभीको मैंने नहीं पढ़ा है। पर प्रस्तुत लेखकने जो दलीलें दी हैं वैसी ही वे हों तो मुझ-जैसे पुराणपंथी (या मेरा यह दावा टिक सकता हो तो सनातनी) को उनका खंडन करनेमें कोई कठिनाई या परेशानी न होगी।

मनुष्यकी पशुके साथ तुलना करना ही भूलकी जड़ है। मनुष्यके लिए जो नीति और मानदंड व्यवहृत होता है वह पशु-नीतिसे अनेक विषयोंमें भिन्न और श्रेष्ठ है। और इस भेदमें ही मनुष्यकी विशेषता है। इसलिए प्रकृतिके नियमोंका जो अर्थ पशु-योनिके लिए किया जाता है वह मनुष्य-योनिपर सदा घटित नहीं होता। मनुष्यको ईश्वरने विवेककी शक्ति दे रखी है। पशु पूर्णतया पराधीन हैं। पशुके लिए स्वतन्त्रता अर्थात् पसन्द, चुनाव जैसी कोई चीज है ही नहीं। पर मनुष्यकी अपनी पसन्द होती है—दो चीजोंमेंसे एकको वह चुन सकता है, भले-बुरेका विचार कर सकता है, और स्वतन्त्र होकर काम करता है इससे उसके लिए पाप-पुण्य भी होता है। पर जहां उसके लिए पसन्द-चुनावका अवकाश है वहां पशुसे हीन बन जानेका अवकाश भी है। वह अगर अपने दिव्य स्वभावका अनुसरण करे तो वह पशुसे ऊपर भी उठ सकता है। जंगली-से-जंगली जान पड़ती हुई जातिमें भी थोड़ा-बहुत विवाहका बंधन होता ही है। अगर कहिए कि इस बंधनमेंही उसका जंगलीपन है, क्योंकि पशु इस बंधनमें बंधता ही नहीं तो इसका अर्थ यह निकला कि स्वच्छन्दता ही मनुष्यका नियम है। पर सारे मनुष्य चौबीस घंटे भी पूर्ण स्वेच्छाचारी बने रहें तो दुनियाका खातमा ही हो जाय। कोई किसीकी न सुने, न माने, स्त्री-पुरुषके बीच किसी मर्यादाका होना अधर्म माना जाय। मनुष्यके वासना-विकार तो पशुसे प्रबल होते ही हैं। इन विकारोंकी लगाम ढीली कर दी जाय तो इनके वेगमेंसे पैदा होनेवाली आग ज्वालामुखीका विस्फोट बनकर क्षण-भरमें दुनियाको भस्म कर डालेगी। थोड़ा-सा विचार करनेसे यह बात हमारे लिए स्पष्ट हो जायगी कि मनुष्यने जो इस जगत्के दूसरे अनेक प्राणियोंपर स्वामित्व प्राप्त कर लिया है वह केवल अपने संयम, त्याग, आत्म-बलिदान, यज्ञ और कुरबानीके बलसे ही किया है।

गरमी-सूजाकका उपद्रव ब्याहकी बदौलत नहीं है। उनकी उत्पत्तिका कारण है विवाहके नियमोंका भंग किया जाना और मनुष्यका पशु न होते हुए भी पशुका अनुकरण करते जाकर दूषित हो जाना। विवाहके नियमोंका पालन करनेवाले एक भी आदमीको मैं नहीं जानता जिसे कभी ऐसी भयानक बीमारियां हुई हों। चिकित्सा-शास्त्रने इस बातको सिद्ध कर

दिया है कि जहां-जहां रोग हुए हैं वहां-वहां मुख्यतः विवाह-नीतिका भंग करने या इस नीतिका भंग करनेवालोंके स्पर्शसे ही हुए हैं। बाल-विवाह और बाल-हत्याकी निर्दय प्रथा भी विवाह-नीतिसे नहीं बल्कि उस नीतिका भंग करनेसे पैदा हुई है। विवाह-नीति तो यह कहती है कि जब पुरुष या स्त्री पूरी उम्रको पहुँच जाय, उसे सन्तानकी चाह हो, वह तन-मनसे स्वस्थ हो, तभी कुछ मर्यादाओंके अंदर रहते हुए वह अपने लिए योग्य साथी ढूंढ़ ले या उसके मां-बाप ढूंढ़ दें। उस साथीमें भी आरोग्य आदि गुण होने ही चाहिए। इस विवाह-नीतिका अनुसरण करनेवाले आदमी दुनियामें कहीं भी जाकर देखिए, सुखी ही दिखाई देंगे। जो बात बाल-विवाहकी है वही वैधव्यकी भी है। दुःखरूप वैधव्य विवाह-नीतिके भंगसे ही उत्पन्न होता है। जहां शुद्ध सच्चा ब्याह हुआ हो वहां वैधव्य या विधुरत्व सहज सुखरूप और शोभा-रूप होते हैं। विवाह-सम्बन्ध जहां ज्ञानपूर्वक जोड़ा जाता है वहां यह सम्बन्ध केवल देहका ही नहीं बल्कि आत्माका भी होता है। और आत्माका सम्बन्ध देह छूट जानेपर भी बना रहता है, वह तो कभी भुलाया ही नहीं जा सकता। जिसे इस सम्बन्धका ज्ञान है उसके लिए पुनर्विवाह अनहोनी बात है, अनुचित है, अधर्म है। जिस ब्याहमें ऊपर बताये हुए नियमोंका पालन न हो उस सम्बन्धको ब्याह कहना ही न चाहिए। और जहां विवाह नहीं वहां वैधव्य या विधुरत्व-जैसी कोई चीज हो ही नहीं सकती। ऐसे आदर्श विवाह अगर हमें अधिक होते हुए नहीं दिखाई देते तो यह उस विवाहकी प्रथाका नाश करनेका नहीं बल्कि उसे दृढ़ नींवपर स्थापित करनेकी दलील होनी चाहिए।

सत्यके नामसे असत्य चलानेवालोंकी संख्या देखकर कोई सत्यमें ही दोष निकाले या उसकी अपूर्णता सिद्ध करनेका यत्न करे तो हम उसे अज्ञान मानेंगे। वैसे ही विवाह-नीतिके भंगके उदाहरणोंसे उस नीतिकी निंदा करनेका यत्न भी अज्ञान और अविचारका ही लक्षण है।

लेखकका कहना है कि विवाह धर्म या नीतिका विषय नहीं है, यह तो महज एक रूढ़ि या रिवाज है, और वह भी धर्म और नीतिके विरुद्ध है, इस-लिए इसे अवश्य है कि उठा दिया जाय। पर मेरी अल्प मतिके अनुसार तो विवाह धर्मकी रक्षा करनेवाली बाड़ है और वह न रही तो दुनिया में धर्म

नामकी कोई वस्तु भी न रहेगी। धर्मकी नींव ही संयम या मर्यादा है। जो आदमी संयमी, परहेजगार नहीं है वह धर्मको क्या समझेगा ? पशुकी वनिस्वत मनुष्यमें वासना-विकार वहुत अधिक हैं। दोनोंके विकारोंकी तुलना हो ही नहीं सकती। जो आदमी अपनी वासनाओं, विकारोंको वशमें नहीं रख सकता वह ईश्वरकी पहचान कर ही नहीं सकता। इस सिद्धान्तका समर्थन करनेकी आवश्यकता ही नहीं। कारण यह कि जो ईश्वरका अस्तित्व अथवा आत्मा और देहकी भिन्नताको स्वीकार नहीं करता उसके लिए विवाह-बंधनकी आवश्यकता सिद्ध करना कठिन होगा, यह मैं मानता हूं। और जो आत्माका अस्तित्व स्वीकार करता और उसका विकास करना चाहता है उसे यह समझानेकी जरूरत होती ही नहीं कि देहका दमन किये विना आत्माकी पहचान या उसका विकास होना अनहोनी वात है। देह या तो स्वच्छंद आचरणका साधन होगी या आत्माको पहचाननेका तीर्थक्षेत्र। अगर वह आत्माकी पहचान करनेवाला तीर्थस्थान है तो उसमें स्वेच्छाचारके लिए स्थान हो ही नहीं सकता। देहको आत्माके अधीन करनेका प्रयत्न प्रतिक्षण कर्त्तव्य है।

'जन-जमीन-जर' 'झगड़ेके घर' वहीं होते हैं; जहां संयम-धर्मका पालन नहीं होता। व्याहकी प्रथाको मनुष्य जितना ही आदर-मान देगा स्त्री 'झगड़ेका घर' वननेसे उतना ही वचेगी। अगर हरएक स्त्री-पुरुप पशुकी तरह जब जैसा चाहे आचरण कर सके तो सव मनुष्य आपसमें लड़कर एक-दूसरेका नाश ही कर डालें। इसलिए मेरी तो यह पक्की राय है कि जिन दोप-दुराचारोंका उल्लेख लेखकने किया है उनकी दवा विवाह-धर्मका छेदन नहीं वल्कि उसका सूक्ष्म निरीक्षण और पालन है।

कहीं स्वजनों और निकट सम्वन्धियोंमें व्याहका सम्वन्ध जोड़नेकी इजाजत है, कहीं नहीं, और यह निस्संदेह नीतिकी भिन्नता है। कहीं एक-पत्नी-व्रतका पालन धर्म माना जाता है, कहीं एक साथ कई पत्नियोंका पति वननेमें प्रतिवंध नहीं होता। नीतिमें यह भिन्नता न होना इष्ट है। पर यह भेद हमारी अपूर्णताकी सूचना देता है, नीतिकी अनावश्यकताका नहीं। हमारा अनुभव ज्यों-ज्यों वढ़ता जायगा त्यों-त्यों सव जातियों और सव

धर्मोंके माननेवालोंमें नीतिकी एकता पैदा होती जायगी। नीतिकी सत्ता स्वीकार करनेवाला जगत् तो आज भी एकपत्नी-व्रतको ही आदरकी दृष्टिसे देखता है। कोई भी धर्म यह तो कहता ही नहीं कि अनेक स्त्रियोंको पत्नी बनाना पुरुषपर फ़र्ज़ है, वह इसकी छूट भर देता है। देश-काल देखकर किसी बातकी इजाजत दे दी जाय तो इससे आदर्श गलत नहीं हो जाता और न आदर्शकी भिन्नता ही सिद्ध होती है।

विधवाओंके विषयमें अपने विचार मैं अनेक बार प्रकट कर चुका हूं। बाल-विधवाका पुनर्विवाह मैं इष्ट मानता हूं। इतना ही नहीं, यह भी मानता हूं कि उसका व्याह कर देना मां-बापका फ़र्ज़ है।

## : ११ :

# वीर्य-रक्षा

कुछ नाजुक मसलोंकी निजी तौरपर चर्चा करना पसन्द करते हुए भी मुझे प्रकाश्य रूपमें उनकी चर्चा करनी पड़ती है। 'यंग इंडिया'के पाठक मुझे इसके लिए माफ़ करेंगे। पर जिस साहित्यको मुझे मजबूरन सरसरी तौरपर पढ़ लेना पड़ा है और श्री ब्यूरोकी पुस्तकपर मेरी आलोचना-को लेकर मेरे पास जो पचासों पत्र आये हैं उनके कारण समाजके लिए अति महत्त्वपूर्ण एक प्रश्नकी सार्वजनिक रूपमें चर्चा करना जरूरी हो गया है। एक मलाबारी भाई लिखते हैं—

"श्री ब्यूरोकी पुस्तककी आलोचनामें आपने लिखा है कि ब्रह्मचर्य अथवा लंबे अरसेतक संयम रखनेसे किसीकी हानि हुई हो, इसकी एक भी मिसाल हमें नहीं मिलती। मुझे खुद अपने लिए तो अधिक-से-अधिक तीन सप्ताह तक संयम रखना ही लाभजनक मालूम होता है। इसके बाद आम तौरसे मुझे बदन भारी और मन-शरीर दोनोंमें बेचैनी मालूम होने लगती है, जिससे मिजाजमें भी चिड़चिड़ापन पैदा हो जाता है। तभी तबीयत ठिकाने आती है जब स्वाभाविक संयोग द्वारा वीर्यपात हो जाय या प्रकृति खुद ही स्वप्नदोषके रूपमें उसका उपाय कर दे। इससे देह या दिमागमें कमजोरी महसूस करनेके बदले सवेरे उठनेपर मैं अपना दिमाग ठंडा और हलका पाता हूं और अपना काम अधिक उत्साहसे कर सकता हूं।

"मेरे एक मित्रके लिए तो संयम स्पष्ट रूपसे हानिकर सिद्ध हुआ। उनकी उम्र ३२के लगभग होगी। पक्के शाकाहारी और धर्मनिष्ठ पुरुष हैं। न कोई तनका दुर्व्यसन है, न मनका। फिर भी दो साल पहले तक, जब उन्होंने ब्याह किया, रातमें स्वप्नदोष होकर, बहुत अधिक वीर्यपात हो जाया करता था, जिससे सवेरे तन, मन दोनों बहुत सुस्त, कमजोर मालूम

होते थे। कुछ दिन बाद उन्हें पेड़ूमें असह्य पीड़ा होने लगी। गांवमें एक वैद्यकी सलाहसे उन्होंने ब्याह कर लिया और अब भले-चंगे हैं।

"मैं बुद्धिसे तो ब्रह्मचर्यकी श्रेष्ठताका कायल हूं, जिसके विषयमें हमारे सभी प्राचीन शास्त्र एकमत हैं। पर जो अनुभव मैंने ऊपर लिखा है उससे स्पष्ट है कि हमारी शुक्र-ग्रंथियोंसे जो वीर्य निकलता है उस सबको पचा लेनेकी शक्ति हममें नहीं है और वह फाजिल वीर्य विष हो जाता है। अतः आपसे सविनय प्रार्थना है कि मुझ-जैसे लोगोंके लिए, जिन्हें संयम और ब्रह्मचर्यके महत्त्वमें पूर्ण विश्वास है, 'यंग इण्डिया' में हठयोगके आसन जैसा कोई साधन या क्रिया बतानेकी कृपा करें जिससे हम अपने शरीरमें पैदा होनेवाले वीर्यको पचा लेनेमें समर्थ हो सकें।"

पत्र-लेखकने जो मिसालें पेश की हैं वे सामान्य अनुभव हैं। ऐसे अनेक उदाहरणोंमें मैंने देखा है कि लोग दो-चार अनुभवोंको ही लेकर सामान्य नियम बना लेते हैं। वीर्यको पचा लेनेका सामर्थ्य लंबे अभ्याससे प्राप्त होता है। यह अनिवार्य भी है, क्योंकि इससे हमें तन-मनका जो बल मिलता है वह और किसी साधनासे नहीं मिल सकता। दवाएं और ऊपरी उपाय शरीरको मामूली तौरसे ठीक रख सकते हैं। पर मनसे वे इतना निर्बल कर देते हैं कि वासनाएं और विकार घातक शत्रुकी तरह हर आदमीको सदा घेरे रहते हैं। उनका सामना करनेकी शक्ति उसमें नहीं रह जाती।

हम अक्सर जो फल चाहते हैं उनसे उलटे फल देनेवाले नहीं तो उनकी प्राप्तिमें बाधक होनेवाले कर्म करते हैं। हमारा जीवन-क्रम वासनाओंकी तृप्तिको लक्ष्य मानकर ही बनाया गया है। हमारा भोजन, हमारा साहित्य, हमारा मन-बहलाव, हमारा काम करनेका समय, सभी इस ढंगसे रखे गये हैं कि हमारी पाशव वासनाओंको उभारें और पोसें। हममेंसे सैकड़े ९०-९५ लोगोंकी इच्छा होती है कि ब्याह करें, बाल-बच्चे हों और जीवनका सुख-मर्यादित रूपमें ही सही—भोगें। जीवनके अन्ततक यही ढर्रा चलता रहता है।

पर नियमके अपवाद सदा हुए हैं, आज भी हैं। ऐसे लोग भी हुए हैं और हैं जो अपना संपूर्ण जीवन मानव-जातिकी सेवामें लगा देना चाहते थे। मानव-जातिकी सेवा भगवान्की भक्तिका समानार्थक है। वे अपने विशेष

कुटुम्बके पालन-पोषण और विश्वकुटुम्बकी सेवामें अपने समयका बटवारा करना नहीं चाहते। निश्चय ही ऐसे स्त्री-पुरुषोंके लिए वह साधारण जीवन-क्रम रखना संभव नहीं जो विशेष, वैयक्तिक स्वार्थोंकी पूर्तिको उद्देश्य मानकर बनाया गया है। जो भगवान्को पानेके लिए ब्रह्मचर्य-व्रत लेगा उसे जीवनकी लगाम ढीली कर देनेसे मिलनेवाले सुखोंका मोह छोड़ना ही होगा और इस व्रतके कड़े बंधनोंमें ही सुख मानना होगा। वह दुनियामें रहे भले ही, पर उसका होकर नहीं रहेगा। उसका भोजन, उसका काम-धंधा, उसके काम करनेका समय, उसके मन-बहलावके साधन, उसका साहित्य, जीवनके प्रति उसकी दृष्टि, सभी साधारण जन-समुदायसे भिन्न होंगे।

अब हम यह पूछ सकते हैं कि पत्र-लेखक और उनके मित्रने क्या पूर्ण ब्रह्मचारी बननेका संकल्प किया था और किया था तो अपने जीवनके ढंगको उस सांचेमें ढाल लिया था? अगर यह नहीं किया था तो यह समझना कठिन नहीं कि क्यों एकको वीर्यपातसे आराम मिलता था और दूसरेको उससे सुस्ती-कमजोरी पैदा होती थी। व्याह निस्संदेह दूसरेके लिए दवा था। उन लाखों-करोड़ों आदमियोंके लिए भी वह परम स्वाभाविक और इष्ट अवस्था है जिनका मन उनके न चाहनेपर भी सदा व्याह और विवाहित जीवनकी बातें सोचा करता है। न दबाये हुएपर अमूर्त विचारकी शक्ति उस विचारसे कहीं अधिक होती है जो मूर्तिमान हो चुका हो, अर्थात् कार्य-रूप प्राप्त कर चुका हो। और जब कर्मपर समुचित अंकुश रखा जाता है तब वह खुद विचारपर ही असर डालने और उसे ठीक रास्तेपर लगाने लगता है। इस रीतिसे कार्य-रूप प्राप्त करनेवाला विचार बन्दी बनकर हमारे वशमें आ जाता है। इस दृष्टिसे देखिए तो व्याह भी संयमका एक प्रकार ही है।

जो लोग संयमका जीवन बिताना चाहते हैं, उन्हें ब्योरेवार हिदायतें एक छोटे-से अखबारी लेखमें नहीं दी जा सकतीं। ऐसे लोगोंको तो मैं अपनी छोटी-सी पुस्तक 'आरोग्यविषयक सामान्य ज्ञान' पढ़ जानेकी सलाह दूंगा, जो इसी उद्देश्यको लेकर कुछ बरस पहले लिखी गई थी। नये अनुभवोंकी दृष्टिसे उसके कुछ अंशोंको दोहरानेकी जरूरत जरूर हो गई है; पर उसके

एक भी शब्दको मैं वापस लेनेके लिए तैयार नहीं हूं। फिर भी संयम-पालनके सामान्य नियम यहां बताये जा सकते हैं—

१. मिताहारी बनिए, सदा थोड़ी भूख बाकी रहते ही चौकेपरसे उठ जाइए।

२. अधिक मिर्च-मसालेवाली और अधिक घी-तेलमें तली-पकी साग-भाजियोंसे परहेज रखिए। जब दूध काफी मिलता हो तो अलगसे घी-तेल खानेकी जरूरत बिलकुल नहीं होती। और जब वीर्यका व्यय बहुत थोड़ा होता है तब थोड़ा भोजन भी काफी होता है।

३. तन-मन दोनोंको सदा सुथरे कामोंमें लगाये रखिए।

४. जल्दी सोने और जल्दी उठनेका नियम जरूरी चीज है।

५. सबसे बड़ी बात यह है कि संयमका जीवन बितानेके लिए भगवान्‌के पाने, उनसे सायुज्य-लाभकी उत्कट जीती-जागती इच्छा होना पहली शर्त है। हृदय जब इस बुनियादी बातका अनुभव करने लगेगा तब यह विश्वास दिन-दिन बढ़ता जायगा कि भगवान् अपने इस औजारको खुद साफ-सुथरा और काम देने लायक बनाये रखेंगे। गीता कहती है—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

और यह अक्षरशः सत्य है।

पत्र-लेखक आसन और प्राणायामकी बातें करते हैं। मैं मानता हूं कि संयमके पालनमें आसन-प्राणायामका स्थान महत्त्वपूर्ण है। पर मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि इस विषयमें मेरा अनुभव इस लायक नहीं कि लिखा जाय। जहांतक मैं जानता हूं, इस विषयपर ऐसा साहित्य नहींके बराबर ही है जिसका आधार इस जमानेका अनुभव हो। पर यह क्षेत्र अन्वेषण करने योग्य है। मगर मैं अनुभवहीन पाठकोंको यह चेतावनी दूंगा कि वे इसके प्रयोग न करें और न जो कोई हठयोगी उन्हें मिल जाय उसको गुरु बना लें। उन्हें यह विश्वास रखना चाहिए कि संयमयुक्त और धर्म-निष्ठ जीवन ब्रह्मचर्यके अति अभीष्ट लक्ष्यकी सिद्धिके लिए पर्याप्त है।

: १२ :

# मनोवृत्तियोंका प्रभाव

एक भाई लिखते हैं—

"जनन-निरोधके विषयपर 'यंग इंडिया'में आपने जो लेख लिखे हैं उन्हें मैं बड़े चावसे पढ़ता रहा हूं। आशा है, आपने जे० ए० हैडफील्डकी पुस्तक 'साइकालोजी एंड मॉरल्स (मानस-शास्त्र और नीति) पढ़ी होगी। मैं उसके इन वाक्योंकी ओर आपका ध्यान खींचना चाहता हूं—'काम-वासना की अभिव्यक्ति जब हमारी नीति-भावनाके प्रतिकूल होती है तो हम उसे रति-सुख कहते हैं और जब वह हमारी प्रेम-भावनाके अनुकूल होता है तब हम उसे कामजनित आनन्द कहते हैं। काम-वासनाकी यह अभिव्यक्ति या तृप्ति पति-पत्नीके परस्पर प्रेमको नष्ट न करके उसको और गाढ़ा करती है। पर संयमरहित संभोग और काम-वासनाकी तृप्ति हेय सुख है, इस भ्रमसे किया जानेवाला इन्द्रिय-दमन दोनों अक्सर मिजाजमें चिड़चिड़ापन पैदा करते और प्रेमको शिथिल कर देते हैं।' अर्थात्, लेखक यह मानता है कि संभोग सन्तानोत्पादनके अतिरिक्त पति-पत्नीके परस्पर प्रेमको भी अधिक पुष्ट और दृढ़ करता है, इसलिए वह एक धार्मिक संस्कार या क्रिया जैसा है और लेखककी बात ठीक हो तो केवल सन्तानोत्पादनके लिए किया जाने-वाला ही संभोग जायज है—अपने इस सिद्धान्तका समर्थन आप किस तरह करेंगे, यह जाननेकी मुझमें उत्सुकता है। मैं खुद तो लेखककी रायको ठीक ही मानना चाहता हूं, क्योंकि वह मानस-शास्त्रके एक प्रमुख पंडितकी राय तो है ही, मैं खुद भी ऐसे लोगोंको जानता हूं जिनका दाम्पत्य-जीवन प्रेम-भावनाकी शरीर-संगके रूपमें व्यक्त करनेकी स्वाभाविक इच्छाके दमनकी कोशिशसे विकृत और नष्ट हो गया है। एक मिसाल लीजिये। एक युवक और एक युवती एक दूसरेको प्यार करते हैं। पर उनके पास इतना पैसा

नहीं कि बच्चेके पालन पोषण और पढ़ाने-लिखानेका बोझ उठा सकें। यह तो आप भी जानते ही होंगे कि इस सामर्थ्यके बिना बच्चा पैदा करना पाप है। आप चाहें तो यह भी कह सकते हैं कि बच्चा पैदा करना स्त्रीकी तन्दुरुस्तीके लिए खराब होगा या उसके पास यों ही जरूरतसे ज्यादा बच्चे हैं। अब आपके मतानुसार इस जोड़ेके लिए दो ही रास्ते हैं—या तो वे ब्याह करें और अविवाहितकी तरह अलग-अलग रहें या अविवाहित रहें। पहली हालतमें हैटफील्डकी बात सही हो तो वासनाके दमनके कारण उनमें चिड़-चिड़ापन पैदा होगा और उनका प्रेम नष्ट होगा। दूसरी सूरतमें भी वह नष्ट होगा, क्योंकि प्रकृति हमारी मानव-व्यवस्थाओंका कतई लिहाज नहीं करती। यह बेशक हो सकता है कि वे एक-दूसरेसे जुदा हो जायं। पर इस बिलगावमें भी मन तो अपना काम करता रहेगा। अतः वासनाके दमनसे मानस विकृतियां उत्पन्न होंगी। और अगर समाज-व्यवस्थाको बदलकर ऐसी कर दें कि हर आदमी अधिक-से-अधिक बच्चोंका बोझ उठानेमें समर्थ हो जाय तो भी जातिके लिए अति वंश-वृद्धि और स्त्रीके लिए अति प्रसवका खतरा तो बना ही रहेगा। कारण यह कि पुरुष अतिशय संयम करते हुए भी साल-भरमें एक बच्चेका बाप तो बन ही जायगा। अतः आप या तो ब्रह्मचर्यका समर्थन करें या जनन-निरोधका। क्योंकि यदा-कदाके समागमका अर्थ भी प्रतिवर्ष एक सन्तानकी प्राप्ति हो सकती है और जैसा कि कभी-कभी अंग्रेज पादरियोंके यहां होता है, यह पतिके लिए तो भगवान्का प्रसाद होगा; पर बेचारी पत्नीके लिए मौतके मुंहमें पैठना हो सकता है।

"आप जिसे संयम कहते हैं वह भी प्रकृतिके काममें उतना ही हस्तक्षेप है जितना गर्भ-निरोधके कृत्रिम साधन; बल्कि उससे बड़ा हस्तक्षेप है। गर्भ-निरोधके साधनोंकी बदौलत मनुष्य विषय-भोगमें अति कर सकता है और वह यह करेगा निःशंक चित्तसे। और अगर वह अपने-आपको बच्चोंकी पैदाइशका कारण नहीं बनने देता तो उस पापका फल वह खुद ही भुगतेगा, और किसीको वह न भुगतना होगा। याद रखिये, खानोंके मजदूरों और मालिकोंमें आज जो संघर्ष हो रहा है उसमें अन्तमें मालिक ही जीतेंगे,

क्योंकि मजदूरोंकी संख्या बहुत बड़ी है। बहुत अधिक बच्चे पैदा करनेवाले बच्चोंका ही अहित नहीं करते, मानव-जातिका भी करते हैं।"

यह पत्र मेरे लिए मनोवृत्तियां और उनके प्रभावका अध्ययन है। एक आदमीका मन रस्सीको सांप मान लेता है। वह भयसे सुन्न हो जाता और बदहवास होकर भागता है, या फिर मनःकल्पित सांपको मारनेके लिए लाठी उठाता है। दूसरा बहनको पत्नी मान लेता है और उसकी काम-वासना जाग जाती है। पर ज्योंही उसे अपना भ्रम मालूम हो जाता है, त्यों ही वासना शान्त हो जाती है।

यही बात लेखकके दिये हुए उदाहरणके भी विषयमें है। बेशक, काम-वासनाकी तृप्ति हेय सुख है—इस भ्रमसे किया जानेवाला इन्द्रिय-दमन मिजाजमें चिड़चिड़ापन पैदा होने और प्रेमके शिथिल होनेका कारण हो सकता है। पर अगर इन्द्रिय-संयम प्रेमको विशुद्ध बनाने, प्रेम-बन्धनको अधिक दृढ़ करने और वीर्यको अधिक अच्छे प्रयोजनके लिए बचा रखनेके उद्देश्यसे किया जाय तो वह प्रेमकी गांठको ढीली करनेके बदले उसे और दृढ़ करेगा। जिस प्रेमका आधार विषय-वासनाकी तृप्ति हो वह कितना ही उत्कट हो, फिर भी होगा स्वार्थका सौदा ही और हलके-से-हलके झटकेको भी बर्दाश्त न कर सकेगा। और समागम जब पशुओंके लिए संस्कार या धार्मिक विधान नहीं है तब मानव जगत्में ही उसे यह पद क्यों दिया जाय? हम उसे वही क्यों न मानें जो वह वास्तवमें है—वंश-रक्षाके उद्देश्यसे किया जानेवाला प्रजोत्पादन, जो हमसे बरबस कराया जाता है? मनुष्यको ईश्वरने संकल्प या इच्छाकी थोड़ी-सी स्वतंत्रता दे रखी है, इसलिए केवल वही पशु-पक्षियोंके जीवनकी अपेक्षा जिस अधिक ऊंचे प्रयोजनके लिए उसका जन्म हुआ है, उसकी सिद्धिके लिए अपनी भोगेच्छाको रोकने, दबानेमें अपने मानव-अधिकारको काममें ला सकता है। संभोग प्रेमको न बढ़ाता है और न उसे बनाये रखने या उसके पोषण-वर्द्धनके लिए किसी तरह आवश्यक है। इसके अगणित अनुभव होते रहनेपर भी जो उसे प्रेम-बन्धनको अधिक दृढ़ करनेके लिए आवश्यक और इष्ट मानते हैं वह महज इसलिए कि ऐसा सोचने-माननेकी हमें आदत लग गई है। ऐसे कितने ही

उदाहरण बताये जा सकते हैं जिनमें संयमसे प्रेमका बन्धन और दृढ़ हुआ है। हां, इतना जरूर है कि संयम अपनी इच्छासे किया जाय, किसी बाहरी दबाव-से नहीं, और पति-पत्नी दोनोंको नीतिके अधिक ऊंचे स्तरपर ले जानेके लिए किया जाय।

मानव-समाज सदा बढ़ती रहनेवाली वस्तु है, आध्यात्मिक दृष्टिसे उसका सतत विकास हो रहा है। यह बात सच है तो पशु-वासनाका दिन-दिन अधिक निग्रह ही उसका आधार होना चाहिए। इस दृष्टिसे विवाहको एक धार्मिक संस्कार मानना होगा, जो पति-पत्नी दोनोंको अनुशासनके बन्धनमें बांधता है, और उनपर यह फर्ज कर देता है कि वे तीसरेके साथ शरीर-संग न करें। परस्पर शरीर-संगकी इजाजत भी, केवल संतानकी कामनासे हो तथा पति-पत्नी दोनों उसे चाहते हों और उसके लिए तैयार हों, तभी देता है। पत्र-लेखकने जो दो स्थितियां बताई हैं उन दोनोंमें सन्तान-की कामनाके बिना संभोगका सवाल नहीं उठता।

अगर हम यह मान लें, जैसा कि पत्र लिखनेवाले भाईने किया है कि सन्तति-प्राप्तिके उद्देश्यके बिना भी संभोग आवश्यक कार्य है तो बहस-दलीलकी गुंजाइश ही नहीं रहती। पर यह दावा टिक नहीं सकता, क्योंकि दुनियाके हर हिस्सेमें कुछ सर्वश्रेष्ठ पुरुषोंके पूर्ण ब्रह्मचर्य-पालनकी पक्की नजीरें पेश की जा सकती हैं। ब्रह्मचर्यका पालन करना अधिकांश मनुष्योंके लिए कठिन है तो यह बात उसके शक्य या इष्ट न माननेकी दलील नहीं हो सकती। सौ साल पहले अधिकांश जनोंके लिए जो बात शक्य न थी आज उसकी शक्यता सिद्ध हो रही है और सीमा-रहित प्रगतिके लिए, जो कालका बिना ओर-छोरवाला मैदान हमारे सामने खुला है, उसमें १०० सालकी गुनत ही क्या है ? वैज्ञानिकोंका कहना अगर सही है तो हमें आदमीका चोला मिलना अभी कलकी ही बात तो है ? उसकी शक्तिकी सीमाएं कौन जानता है, कौन बांध सकता है ? सोच तो यह है कि उसमें भला-बुरा करनेकी असीम शक्ति है इसके नित नये प्रमाण हमें मिलते जा रहे हैं।

संयमका शक्य और इष्ट होना मान लिया जाय तो उसके पालनके उपाय हमें ढूंढ़ने और निकालने ही होंगे। और जैसा कि मैं किसी पिछले

लेखमें कह चुका हूं अगर हमें संयम और नीति-बंधनके अंदर रहना है तो हमें अपना जीवन-क्रम बदलना ही होगा। लड्डू हमारे पेटमें पहुंच जाय और हाथपर भी बना रहे, यह असम्भव प्रयत्न हमें न करना चाहिए। हम जननें-द्रियका नियमन करना चाहते हैं तो हमें और सभी इन्द्रियोंपर अंकुश रखना होगा। आंख, कान, नाक, जीभ, हाथ और पांवकी लगाम ढीली कर दी जाय तो जननेन्द्रियको काबूमें रखना असंभव होगा। चिड़चिड़ापन, हिस्टी-रिया या मूर्छा-रोग और पागलपनको भी ब्रह्मचर्य-पालनके प्रयत्नका परिणाम बताना गलत है। पता लगाया जाय तो ये रोग अधिकांशमें इंद्रियोंके असंयमके ही फल होते हैं। किसी भी पाप—प्रकृतिके नियमके किसी भी उल्लंघन—का दण्ड हमें न मिले यह हो नहीं सकता।

मुझे शब्दोंके लिए झगड़ा नहीं करना है। इंद्रिय-संयम भी अगर गर्भ-निरोधके साधनोंके समान ही प्रकृतिके काममें हस्तक्षेप है तो हुआ करे। मैं तब भी कहूंगा कि एक हस्तक्षेप जायज़ और इष्ट है, क्योंकि वह व्यक्ति और समाज दोनोंका हित करता है और दूसरा हस्तक्षेप दोनोंके पतनका कारण होता है इसलिए नाजायज़ है। संयम सन्तति-नियमनका एक-मात्र उपाय है, गर्भाधान-निरोधक साधनोंकी सहायतासे बच्चोंका पैदा होना रोकना जातिका आत्मघात है।

खान-मालिक अगर अन्यायके रास्तेपर चलते हुए भी विजयी होंगे तो इसलिए नहीं कि मजदूरोंके घर जरूरतसे ज्यादा बच्चे पैदा हो रहे हैं, बल्कि इसलिए कि मजदूरोंने संयमका पाठ पूरे तौरपर नहीं पढ़ा है। बच्चे न हों तो खान-मजदूरोंके जीवनमें कोई बात ही न रहेगी जो उन्हें अपनी दशा सुधारनेकी प्रेरणा करे, और न मजदूरी बढ़ानेकी मांगके लिए कोई उचित कारण रहेगा। क्या उन्हें शराब पीना, तंबाकू पीना, जुआ खेलना चाहिए? क्या यह कहना इसका कोई जवाब होगा कि खानोंके मालिक ये सभी बातें करते हैं और फिर भी उनपर हावी रहते हैं? मजदूर अगर पूंजीपतियोंसे अच्छे होनेका दावा नहीं कर सकते तो उन्हें दुनियाकी हमदर्दी मांगनेका क्या हक़ है? इसीलिए कि पूंजीपतियोंकी संख्या बढ़े और पूंजीवादकी जड़ और मजबूत हो? हमें यह आशा दिलाकर लोकतन्त्रकी पूजा करनेको

कहा जाता है कि दुनियामें उसका राज होनेपर हमें अच्छे दिन देखनेको मिलेंगे। अतः जिन बुराइयोंको हम पूंजीपति और पूंजीवादकी देन बताते हैं उन्हें बड़े पैमानेपर करनेका दोषी हमें नहीं बनना चाहिए।

मैं जानता हूं और यह मेरे लिए दुःखकी बात भी है कि इंद्रिय-निग्रह आसान काम नहीं है। पर इस साधनाकी धीमी प्रगतिसे हमें घबराना न चाहिए। 'उतावला सो बावला'। अधीरतासे मजदूरी-पेशा वर्गमें बहुत अधिक बच्चे पैदा होनेकी बुराई नहीं दूर होने की। इस वर्गमें काम करनेवाले जन-सेवकोंके सामने एक विशाल कार्य करनेको पड़ा है। उन्हें चाहिए कि मानव-जातिके सबसे बड़े शिक्षकोंने अपने अनुभवकी अमूल्य निधिसे हमें जो संयमका पाठ पढ़ाया है, उसे अपने जीवन-क्रमसे बाहर न कर दें। जीवनकी जिन मूलभूत सचाइयोंकी विरासत उन्होंने हमें सौंपी है उनकी परीक्षा जिस प्रयोगशालामें हुई हैं वह आजकी नये-से-नये साधनों, उपकरणोंसे संपन्न प्रयोगशालासे अधिक अच्छी थी। संयमको उन सभीने हमारे लिए जरूरी बताया है।

: १३ :

# धर्म-संकट

"मैं विवाहित हूं। ३० सालका हो चुका हूं। पत्नीकी उ
यही होगी। हमें पांच बच्चे हुए थे जिनमेंसे दो सौभाग्यवश प
चुके हैं। बाकी बच्चोंके बारेमें मेरी क्या जिम्मेदारी है इसे म
पर उस फर्जको पूरा करना मुझे नामुमकिन नहीं तो अति
दिखाई देता है। आपने संयमकी सलाह दी है। पिछले त
उसका पालन कर रहा हूं; पर अपनी सहधर्मिणीकी इच्छा
कर रहा हूं। साधारण मनुष्य जिसे जीवनका सुख कहते हैं वह
आग्रह करती है। आप अपने ऊंचे आसनसे उसे पाप कह सक
जीवन-संगिनी उसे इस दृष्टिसे नहीं देखती। अधिक बच्चे पै
वह नहीं डरती। अपने दायित्वके जिस ज्ञानका मुझे गर्व है व
है। मेरे मां-बाप अधिकतर पत्नीका ही पक्ष करते हैं, और
झगड़ा होता रहता है। काम-वासनाकी तृप्ति न होनेसे पत
इतना चिड़चिड़ा और बिगड़ैल हो गया है कि जरा-जरासी
उठती है। अब मेरे सामने यह सवाल है कि इस मुश्किलको
जितने बच्चे अभी हैं वही मेरे लिए अधिक हैं। मैं इतना गरीब
ही पालन-पोषण ठीक तौरसे नहीं कर सकता। पत्नीको समझा
दिखाई देता है। जो तृप्ति वह चाहती है वह न मिली तो
बुरा रास्ता पकड़ ले, पागल हो जाय या आत्मघात कर ले।
कभी-कभी जीमें आता है कि देशका क़ानून इजाज़त देता तो
बच्चोंको गोली मार देता, जैसा आप लावारिस कुत्तोंके साथ
तीन महीनेसे किसी दिन मुझे दूसरे जून रोटी न मिली,

कई दिन उपवास भी नहीं चल सकता। पत्नीको मेरे कष्टसे हमदर्दी नहीं, क्योंकि वह मुझे ढोंगी समझती है। जनन-निरोध-विषयक साहित्यसे मेरा परिचय है। वह लुभानेवाली भाषामें लिखा गया है। ब्रह्मचर्य विषयपर लिखित आपकी पुस्तक भी पढ़ी है। मेरे लिए 'एक ओर कुआं है तो दूसरी ओर खाई'।"

यह एक युवकके लिखे हुए हृदय-विदारक पत्रका अविकल भावार्थ है। लेखकने अपना पूरा नाम-पता दिया है। मैं उसे कई बरससे जानता हूं। वह अपना नाम देते हुए डरते थे इसलिए इसके पहले दो बार मुझे गुमनाम पत्र लिखा। उन्हें आशा थी कि मैं 'यंग इंडिया'में उनकी चर्चा करूंगा। इस तरहके गुमनाम पत्र मेरे पास इतने आते हैं कि उनकी चर्चा करनेमें मुझे संकोच होता है। मुझे तो इस पत्रपर कुछ लिखनेमें भी झिझक हो रही है, गोकि मैं जानता हूं कि उसकी बातें सोलह आने सही हैं, और वह ऐसे आदमीका लिखा हुआ है जो संयमके रास्तेपर चलनेकी सच्चे दिलसे कोशिश कर रहा है। विषय बहुत ही नाजुक है, पर मेरा दावा है कि मुझे ऐसे मामलोंका काफी अनुभव है और मैंने यह भी देखा है कि ऐसी कठिनाइयोंमें पड़े हुए लोगोंको मेरे बताये हुए उपायसे राहत मिली है, इसलिए मैं इस स्पष्ट कर्त्तव्यके पालनसे मुंह नहीं मोड़ सकता।

जहांतक अंग्रेजी पढ़े हुए भारतीयोंका सवाल है भारतकी स्थिति हमारे लिए दुहरी कठिनाई पैदा करती है। सामाजिक योग्यताकी दृष्टिसे पति और पत्नीमें इतना अन्तर होता है जिसे मिटाना एक तरहसे असंभव ही है। कुछ युवक संभवतः यह सोचते हैं कि पत्नीको उसके मनपर छोड़ देनेसे ही हमारा मसला हल हो गया, हालांकि वे जानते हैं कि उनकी बिरादरीमें तलाक नहीं दिया जाता, इसलिए उनकी पत्नीके लिए दूसरा ब्याह कर लेना संभव नहीं। दूसरे लोग—और यही वर्ग सबसे बड़ा है—अपनी पत्नियोंको अपने मानस-जीवनका साथी न बनाकर केवल विषय-सुख भोगनेका साधन मानता है। बहुत ही थोड़े लोग ऐसे हैं—अवश्य ही उनकी संख्या दिन-दिन बढ़ रही है—जिनकी अन्तरात्मा जाग चुकी है और जो उसी धर्म-संकटमें पड़े हैं जो पत्र लिखनेवाले भाईके सामने उपस्थित है।

मेरी रायमें स्त्री-पुरुषका समागम तभी जायज माना जायगा जब दोनों उसे चाहते हों। मैं नहीं मानता कि पति या पत्नी किसीको भी यह हक हासिल है कि दूसरेको अपनी इच्छाकी पूर्तिके लिए मजबूर करे। और जिस दम्पतीका प्रश्न तत्काल हमारे विचारका विषय है उसके बारेमें मेरी स्थिति ठीक हो तो पत्नीके आग्रहके सामने झुकना किसी तरह पतिका नैतिक कर्त्तव्य नहीं है। पर यह इनकार पतिके सिरपर ज्यादा बड़ी और ऊंची जिम्मेदारी लाद देता है। वह अपने आपको बड़ा साधक-संयमी समझकर पत्नीको हेय दृष्टिसे न देखें, बल्कि नम्रताके साथ यह स्वीकार करे कि जो बात उसके लिए अनावश्यक है वह पत्नीके लिए प्रकृतिका आदेश है, इसलिए वह उसके साथ बहुत ही स्नेह और मृदुताका व्यवहार करे और मनमें यह विश्वास रखे कि उसकी अपनी पवित्रता पत्नीकी काम-वासनाको उच्चतम प्रकारकी शक्तिमें बदल देगी। अतः उसे अपनी पत्नीका सच्चा मित्र, पथ-प्रदर्शक और उसका दुख-दर्द दूर करनेवाला होना होगा। अपनी पत्नीमें उसे पूरा विश्वास रखना होगा और अटूट धैर्यके साथ उसे यह समझाना होगा कि नीतिका कौन-सा तत्त्व उसके आचरणका आधार है, पति-पत्नीके परस्पर सम्बन्धका सच्चा रूप और विवाहका सच्चा अर्थ क्या है। यह करते हुए वह देखेगा कि बहुत-सी बातें जो पहले उसके लिए स्पष्ट नहीं थीं अब स्पष्ट हो गई, और उसका संयम सच्चा होगा तो पत्नीके हृदयको वह अपने और भी निकट खींच लेगा।

प्रस्तुत मामलेमें मुझे कहना ही होगा कि केवल अधिक बच्चे पैदा होनेका डर पत्नीकी संभोगेच्छा तृप्त करनेसे इनकार करनेका यथेष्ट कारण नहीं हो सकता। केवल बच्चोंका भार उठानेके डरसे पत्नीके संभोग-प्रस्तावको अस्वीकार करना मुझे तो कायरपन-सा लगता है। कुटुम्बकी बेहिसाब बाढ़ रोकना पति-पत्नीके अलग-अलग और संयुक्त रूपसे अपनी काम-वासनापर अंकुश रखनेके लिए अच्छा कारण है; पर वह अपने जीवन-संगीके साथ सोनेका अधिकार छीननेके लिए यथेष्ट कारण नहीं हो सकता।

और फिर बच्चोंसे इतनी घबराहट किसलिए? ईमानदार, मेहनती और समझदार आदमी निश्चय ही इतना पैसा कमा सकता है कि तीन-

चार बच्चोंके भरण-पोषणका बोझ उठा ले। मैं यह मानता हूं कि प्रस्तुत पत्र-लेखक-जैसे पुरुषके लिए जो अपना सारा समय देशकी सेवामें लगा सकने-की सच्चे दिलसे कोशिश कर रहा है, यह कठिन होगा कि एक बड़े और बढ़ते हुए कुटुम्बका भरण-पोषण करे और साथ-साथ स्वदेशकी सेवा भी करता चले जिसकी करोड़ों सन्तानोंको आधे पेट खाकर रहना पड़ता है। इन पृष्ठोंमें अक्सर मैंने यह बात लिखी है कि हिन्दुस्तान जबतक गुलाम है तबतक बच्चे पैदा करना उचित नहीं। पर यह युवकों और युवतियोंके अविवाहित रहनेके लिए तो बहुत अच्छा कारण है; किन्तु विवाहित स्त्री-पुरुषके लिए एक-दूसरेके साथ दाम्पत्य असहयोग करनेका निश्चयात्मक हेतु नहीं हो सकता। हां, जब शुद्ध धर्मभावसे, अन्तरसे ब्रह्मचर्य-पालनकी ऐसी पुकार उठे कि उसे अनसुनी करना नामुमकिन हो तब यह असहयोग जायज होता है, बल्कि फ़र्ज हो जाता है। और यह पुकार जब सच्ची होगी तो दूसरे साथी पर भी उसका बहुत अच्छा असर होगा। वह समयसे उसपर वैसा असर न डाल सके तो भी ब्रह्मचर्य-पालन कर्तव्य होगा, भले ही इसमें अपने साथीका दिमाग खराब हो जाने या उसके मर जानेका भी खतरा हो। सत्यकी साधना और स्वदेशकी सेवाके लिए जैसे बलिदान अपेक्षित है; ब्रह्मचर्यकी साधना भी वैसे ही वीरोचित बलिदान मांगती है। इतना कह चुकनेके बाद यह कहनेकी आवश्यकता शायद ही बाकी रहती हो कि कृत्रिम उपायोंसे संतानोत्पादन रोकना नीति-नाशक आचरण है और जीवनका जो आदर्श मेरे तर्कका आधार है उसमें इनके लिए स्थान नहीं है।

: १४ :

# मेरा व्रत

भलीभांति चर्चा कर लेने और गहरे सोच-विचारके अनन्तर १९०६ ई० में मैंने ब्रह्मचर्य-व्रत लिया। व्रत लेनेके समयतक मैंने धर्मपत्नीकी राय इस विषयमें नहीं ली थी। व्रत लेते समय ली। उसकी ओरसे कुछ भी विरोध नहीं हुआ।

यह व्रत लेते हुए मुझे बहुत कठिन जान पड़ा। मेरी शक्ति अल्प थी। वासनाओंको दबाना कैसे हो सकेगा? अपनी पत्नीके साथ भी सविकार सम्बन्ध न रखना कुछ विचित्र-सी बात लग रही थी। फिर भी यही मेरा कर्त्तव्य है, यह मैं साफ देख सकता था। मेरी नीयत शुद्ध थी। अतः भगवान् बल देगा यों सोचकर मैं कूद पड़ा।

आज बीस बरस बाद उस व्रतको याद करके मुझे आनन्दजनक आश्चर्य होता है। संयमके पालनेकी भावना तो १९०१ से प्रबल हो रही थी और मैं उसका पालन कर भी रहा था। पर जो स्वतन्त्रता और आनन्द मुझे अब मिलने लगा वह १९०६ के पहले कभी मिला हो यह मुझे याद नहीं आता। कारण यह कि उस समय मैं वासनासे बंधा था। किसी भी क्षण उसके वश हो जा सकता था। अब वासना मुझपर सवारी गांठनेमें असमर्थ हो गई।

इसके सिवा अब ब्रह्मचर्यकी महिमा मैं अधिकाधिक समझने लगा। व्रत मैंने फिनिक्समें लिया। घायलोंकी सेवाके कामसे छुट्टी पाकर मैं फिनिक्स गया था। वहांसे मुझे तुरंत जोहान्सबर्ग जाना था। मैं वहां गया और एक महीनेके अंदर ही सत्याग्रह-संग्रामकी नींव पड़ी। मानो यह ब्रह्मचर्य-व्रत मुझे उसके लिए तैयार करनेको ही आया हो! सत्याग्रहकी योजना मैंने पहलेसे नहीं बना रखी थी। उसकी उत्पत्ति तो अनायास और बिना हमारे चाहे हुई। पर मैंने देखा कि उसके पहलेके मेरे सभी काम—फिनिक्स जाना,

जोहान्सबर्गका भारी घर-खर्च घटा डालना, और अन्तमें ब्रह्मचर्य-व्रत लेना मानो उसकी तैयारी थे।

ब्रह्मचर्यके सम्पूर्ण पालनका अर्थ है ब्रह्मका साक्षात्कार। यह ज्ञान मुझे शास्त्रसे नहीं मिला था। यह अर्थ मेरे लिए धीरे-धीरे अनुभव-सिद्ध होता गया। इससे सम्बद्ध शास्त्र-वचन तो मैंने पीछे पढ़े। ब्रह्मचर्यमें शरीरकी रक्षा, बुद्धिकी रक्षा, आत्माकी रक्षा है, व्रत लेनेके बाद मैं इस बातका दिन-दिन अधिकाधिक अनुभव करने लगा। कारण यह कि अब ब्रह्मचर्यको घोर तपश्चर्या-रूप न रहने देकर रसमय बनाना था; इसीके सहारे चलना था। अतः अब उसमें मुझे नित-नई खूबियोंके दर्शन होने लगे।

पर मैं जो यों ब्रह्मचर्यसे रस लूट रहा था उससे कोई यह न समझ ले कि उसकी कठिनताका अनुभव मुझे नहीं हो रहा था। आज मेरे ५६ साल पूरे हो चुके हैं, फिर भी उसकी कठिनताका अनुभव तो होता ही है। यह असि-धारा-व्रत है, इस बातको दिन-दिन अधिकाधिक समझ रहा हूं। निरन्तर जाग्रत रहनेकी आवश्यकता देख रहा हूं।

ब्रह्मचर्यका पालन करना हो तो स्वादेन्द्रिय 'जीभ'को वशमें करना ही होगा। मैंने खुद अनुभव करके देखा कि जीभको जीत लें तो ब्रह्मचर्यका पालन बहुत आसान हो जाता है। इसलिए मेरे इसके बादके भोजन-विषयक प्रयोग केवल अन्नाहारकी दृष्टिसे नहीं बल्कि ब्रह्मचर्यकी दृष्टिसे भी होने लगे। मैंने प्रयोग करके देख लिया कि हमारी खुराक थोड़ी सादी और बिना मिर्च-मसालेकी होनी चाहिए और प्राकृतिक अवस्थामें खाई जानी चाहिए। अपने विषयमें तो मैंने छः वर्षतक प्रयोग करके देख लिया है कि ब्रह्मचारीका आहार वनपक्व फल है। जिन दिनों मैं सूखे या रसदार वनपक्व फल खाकर रहता था उन दिनों मैं अपने आपमें जो निर्विकारता पाता था उस खुराकको बदल देनेके बाद उसका अनुभव न हो सका। फलाहारके समय ब्रह्मचर्य सहज था। दुग्धाहारसे यह कष्ट-साध्य हो गया है। फलाहारसे दुग्धाहारपर मुझे क्यों आना पड़ा—इसकी चर्चा उचित स्थानपर की जायगी। यहां तो इतना कहना काफी है कि दूधका आहार ब्रह्मचर्यके लिए विघ्नकारक है, इस विषयमें मुझे तनिक भी शंका नहीं। इस कथनसे कोई यह अर्थ न निकाले

ले कि हर ब्रह्मचारीके लिए दूधका त्याग आवश्यक है। आहारका असर ब्रह्मचर्यपर कितना होता है इस विषयमें बहुत प्रयोग करनेकी आवश्यकता है। मुझे अबतक कोई ऐसा फलाहार नहीं मिला जो स्नायुओंको पुष्ट करने और आसानीसे पचनेमें दूधकी बराबरी कर सके; कोई वैद्य, हकीम या डाक्टर भी नहीं बता सका। इसलिए दूध विकार पैदा करनेवाली चीज है यह जानते हुए भी फिलहाल में किसीको उसके त्यागकी सलाह नहीं दे सकता।

बाह्य उपचारोंमें जैसे आहारके प्रकार और परिमाणकी मर्यादा आवश्यक है वैसे ही उपवासको भी समझना चाहिए। इंद्रियां इतनी बलवान हैं कि उनपर चारों ओरसे, ऊपर और नीचेसे, दशों दिशाओंसे घेरा डाला जाय, तभी काबूमें रहती हैं। यह तो सभी जानते हैं कि आहारके बिना वे अपना काम नहीं कर सकतीं। इसलिए इन्द्रिय-दमनके उद्देश्यसे इच्छापूर्वक किये हुए उपवाससे इन्द्रियोंको काबूमें लानेमें बहुत मदद मिलती है, इस विषयमें मेरे मनमें तनिक भी शंका नहीं। कितने ही लोग उपवास करते हुए भी विफल होते हैं। इसका कारण यह है कि वे यह मान लेते हैं कि उपवाससे ही सबकुछ हो जायगा और शरीरसे स्थूल उपवास-मात्र करते हैं; पर मनसे छप्पन भोग भोगते रहते हैं। उपवासके दरमियान, उपवास समाप्त होनेपर क्या-क्या खायेंगे, इस कल्पनाका स्वाद हम लिया करते हैं और फिर शिकायत करते हैं कि उससे न जीभ वशमें आई न जननेन्द्रिय! उपवासका सच्चा उपयोग वही है जहां मन भी देह-दमनमें साथ देता है, अर्थात् मनमें विषय-भोगके प्रति विरक्ति हो जानी चाहिए। विषय-वासनाकी जड़ें तो मनमें ही होती हैं। उपवासादि साधनोंसे बहुत सहायता मिलती है, फिर भी वह मात्रामें थोड़ी ही होती है। कह सकते हैं कि उपवास करते हुए भी मनुष्य विषयोंमें आसक्त रह सकता है। पर उपवासके बिना विषयासक्तिका जड़-मूलसे जाना संभव नहीं। अतः उपवास ब्रह्मचर्य-पालनका अनिवार्य अंग है।

ब्रह्मचर्य-पालनका प्रयत्न करनेवाले बहुतेरे निष्फल होते हैं। इसका कारण यह है कि खाने-पीने, देखने-सुननेमें वे अब्रह्मचारीके जैसे रहते हुए भी ब्रह्मचर्य निभाना चाहते हैं। यह प्रयत्न वैसा ही है जैसी गरमीके मौसिममें

शीतकालका अनुभव करनेकी कोशिश। संयमी और स्वच्छंद, त्यागी और भोगीके जीवनमें भेद होना ही चाहिए। साम्य केवल ऊपर-ऊपरसे दिखाई देता है। दोनोंका भेद स्पष्ट दिखाई देना चाहिए। आंखका उपयोग दोनों करते हैं। पर ब्रह्मचारी देव-दर्शन करता है। भोगी नाटक-सिनेमामें लीन रहता है। कानसे दोनों काम लेते हैं। पर एक भगवद्-भजन सुनता है, दूसरेको विलासी गाने सुननेमें आनन्द आता है। जागरण दोनों करते हैं; पर एक जाग्रत अवस्थामें हृदय-मंदिरमें विराजनेवाले, रामको भजता है, दूसरेको नाच-रंगकी धुनमें सोनेका खयाल ही नहीं रहता। खाते दोनों हैं; पर एक शरीर-रूपी तीर्थक्षेत्रके रक्षार्थ देहको भोजन-रूपी भाड़ा देता है, दूसरा जबानके मजेकी खातिर देहमें बहुत-सी चीजोंको ठूंसकर उसे दुर्गंधमय बना देता है। यों दोनोंके आचार-विचारमें भेद रहा ही करता है और यह अंतर दिन-दिन बढ़ता जाता है, घटता नहीं।

ब्रह्मचर्यके मानी हैं, मन-वचन-कायासे सम्पूर्ण इन्द्रियोंका संयम। इस संयमके लिए ऊपर बताये हुए त्यागोंकी आवश्यकता है, यह मुझे दिन-दिन दिखाई देता गया। आज भी दिखाई दे रहा है। त्यागके क्षेत्रकी सीमा ही नहीं है, जैसे ब्रह्मचर्यकी महिमा भी नहीं है। ऐसा ब्रह्मचर्य अल्प प्रयत्नसे सधनेवाली वस्तु नहीं। करोड़ोंके लिए तो वह सदा केवल आदर्श रूप रहेगा, इसलिए कि प्रयत्नशील ब्रह्मचारी तो अपनी कमियोंको हर वक्त देखता रहेगा। अपने-मनके कोने-अंतरमें छिपे हुए विकारोंको पहचान लेगा और उन्हें निकाल बाहर करनेकी कोशिश सदा करता रहेगा। जबतक विचारोंपर यह काबू न मिल जाय कि अपनी इच्छाके बिना एक भी विचार मनमें न आये तबतक ब्रह्मचर्य संपूर्ण नहीं। विचार-मात्र विकार है। उन्हें वशमें करनेके मानी हैं मनको वशमें करना। और मनको वशमें करना तो वायुको वशमें करनेसे भी कठिन है। फिर भी अगर आत्माका अस्तित्व सच्चा है तो यह वस्तु साध्य होनी ही चाहिए। हमारे रास्तेमें कठिनाइयां आती हैं इससे कोई यह न मान ले कि यह कार्य असाध्य है। यह परम अर्थ है और परम अर्थके लिए परम प्रयत्नकी आवश्यकता हो तो इसमें अचरज क्या।

पर स्वदेश आनेपर मैंने देखा कि ऐसा ब्रह्मचर्य केवल प्रयत्न-साध्य

नहीं है। कह सकता हूं कि तव तो मैं मूर्छामें था। मैंने मान लिया था कि फलाहारसे विकार जड़-मूलसे नष्ट हो जाता है, और अभिमानके साथ समझता था कि अव मुझे कुछ करना नहीं रहा।

पर इस विचारके प्रकरण तक पहुंचनेमें अभी देर है। तबतक इतना कह देना जरूरी है कि जो लोग ईश्वर-साक्षात्कारके उद्देश्यसे, जिस ब्रह्मचर्यकी व्याख्या मैंने ऊपर की है वैसे ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहते हों, वे अपने प्रयत्नके साथ-साथ ईश्वरपर श्रद्धा रखनेवाले होंगे तो उनके निराश होनेका कोई कारण नहीं।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्ज्यं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥[1]

अतः रामनाम और रामकृपा यही आत्मार्थीका अंतिम साधन है, इस सत्यका साक्षात्कार मैंने हिन्दुस्तान आनेपर ही किया।[2]

---

[1]निराहार रहनेवालेके विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, पर रस-राग बना रहता है। ईश्वरके दर्शनसे वह भी चला जाता है।

(गीता अ० २ श्लो० ५९।)

[2]आत्म-कथा खण्ड ३ का आठवां अध्याय।

## : १५ :

# विकारका विच्छू

कलकत्तेके एक विद्यार्थी पूछते हैं :—

'कोई अपनी पत्नीके साथ शुद्ध व्यवहार रखे, अर्थात् ब्रह्मचर्यका पालन करे तो क्या उसका दाम्पत्य जीवन सुखमय होगा ? अपढ़ पत्नीको ब्रह्मचर्यकी महिमा वह किस तरह समझा सकता है ? उसे संयम-धर्म कैसे सिखा सकता है ? ऐसा करनेमें उसे कहांतक सफलता मिलेगी ? समाजके आजके दूषित वातावरणमें पत्नीको भ्रष्ट होनेसे कहांतक बचाया जा सकता है ?'

मेरा और मेरे साथियोंका अनुभव तो यह है कि पति-पत्नी अगर स्वेच्छासे ब्रह्मचर्यका पालन करें तो आत्यन्तिक सुख पा सकते हैं। अपना सुख उन्हें नित्य बढ़ता हुआ जान पड़ेगा। अशिक्षित पत्नीको ब्रह्मचर्यकी महिमा समझानेमें कोई अड़चन नहीं होती, या यों कहिये कि ब्रह्मचर्य शिक्षित-अशिक्षितका भेद नहीं जानता। ब्रह्मचर्य तो केवल हृदयके बलकी बात है। मैं ऐसी अपढ़ स्त्रियोंको जानता हूं जो विवाहिता होते हुए भी ब्रह्मचर्यका पालन कर रही हैं। समाजके चित्तको चंचल कर देनेवाले वातावरणमें भी जो पति ब्रह्मचर्यका पालन करता है वह अपनी पत्नीके शीलकी रक्षा करनेमें अधिक समर्थ हो जाता है। ब्रह्मचर्यका अभाव पत्नीको भ्रष्ट होनेसे बचा तो नहीं सकता; पर उसके भ्रष्टाचारका पर्दा बन जाता है। इसकी मिसालें दी जा सकती हैं।

ब्रह्मचर्यकी शक्ति अमित है। बहुतेरे उदाहरणोंमें मुझे यह अनुभव हुआ है कि ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाला स्वयं विकारसे मुक्त नहीं होता, इस कारण उसके प्रयत्नका प्रभाव पत्नीके ऊपर नहीं पड़ सकता। विकार बड़ा चालाक होता है। अतः अपने भाई-बंदोंको पहचाननेमें उसे देर नहीं

लगती। जो पत्नी अभी विकार-रहित नहीं हुई है, जो विकारोंके त्यागवे
लिए अभी तैयार भी नहीं है, वह पतिके हृदयमें छिपे हुए विकारको तुरं
पहचान लेती है और उसके ढीले और निष्फल प्रयत्नपर मन-ही-मन हँसतं
हुई स्वयं निर्भय रहती है। जो ब्रह्मचर्य अविचल है और जिसमें शुद्ध प्रे
भरा हुआ है, वह ब्रह्मचर्य अपने सामनेवालेके विकारको जलाकर भस्म क
देता है, इसमें किसीको शंका न करनी चाहिए।

बेलूर-मठमें बहुत-सी सुन्दर मूर्तियोंका संग्रह है। उसमें एक ऐसं
मूर्ति मैंने देखी है जिसके शिल्पीने कामको विच्छू बनाया है। उसने ए
कामिनीको डंक मारा है जो उसके कष्टसे विह्वल होकर बिलकुल नंगी हं
गई है। विच्छू अपनी इस विजय पर इतराता हुआ कामिनीके पैरके पा
खड़ा है और उसकी ओर देखकर हँस रहा है। जिस पतिने इस विच्छूप
विजय पा ली उसकी आंखोंमें, उसके स्पर्शमें, उसकी वाणीमें ब्रह्मचर्यक
शीतलता होती है। वह अपने निकट रहनेवालेके विकारोंको क्षण-मात्र
ठंडा करके शांत कर देता है।

: १६ :

# संयमको किसकी आवश्यकता है ?

एक व्याहके उम्मीदवार भाई लिखते हैं—

"आप लिखते हैं—'संयमके पालनमें एकको दूसरेकी रजामन्दीकी जरूरत नहीं है।' क्या यह औचित्यकी सीमाके आगे जाना नहीं है? पत्नीको जबतक अपने ज्ञानमें साफी न बना सकें तबतक तो राह देखनी चाहिए। हिन्दुस्तानमें अज्ञानका राज सर्वत्र फैला हुआ है और उसमें भी स्त्रियोंके लिए तो पढ़ाईका दरवाजा ही बन्द है। ऐसे देशमें यह माननेसे कैसे काम चलेगा कि सब लोग सच्चे रास्तेको पहचानकर तुरन्त उसपर चलने लगेंगे? 'पतिका कर्तव्य' बार-बार पढ़नेपर अभी खुलासेकी जरूरत बनी है। मैं अभी अविवाहित हूं, पर थोड़े ही दिनोंमें व्याह होनेवाला है। अतः आपसे खुलासा कर लेना जरूरी मालूम हो रहा है। इसी गरजसे यह पत्र लिख रहा हूं।"

जिस संयमको दूसरेकी सहमतिकी आवश्यकता होती है वह संयम टिक नहीं सकता, यह मेरा अनुभव है। संयमको तो केवल अन्तर्नादकी आवश्यकता होती है। संयमका बल मनके बलपर अवलंबित होता है और संयम ज्ञानमय और प्रेममय हो तो उसकी छाप आस-पासके वातावरणपर पड़े बिना न रहेगी। अन्तमें विरोध करनेवाला भी अनुकूल बन जाता है। पति-पत्नीके बारेमें भी यही बात है। पत्नी तैयार न हो तबतक पतिको और पति तैयार न हो तबतक पत्नीको रुकना पड़े तब तो बहुत करके दोनों भोग-बंधनसे कभी छूट ही न सकेंगे। बहुतेरी मिसालोंमें हम देख चुके हैं कि जहां एकका संयम दूसरेपर अवलंबित होता है वहां वह अन्तमें टूट ही जाता है। और यह ढिलाई या कमजोरी ही इसका कारण है। हम कुछ अधिक गहराईमें उतरकर देखें तो मालूम होगा कि जहां एकको दूसरेकी

रजामंदीकी जरूरत होती है वहां संयमकी सच्ची तैयारी या उसकी सच्ची लगन होती ही नहीं। इसीसे तो निष्कुलानन्दने लिखा है कि 'त्याग न टके रे वैराग विना'। वैराग्यको अगर रागके साथ ही जरूरत हो सकती हो तो संयम-पालनकी इच्छा करनेवालेको इच्छा न करनेवालेकी सहमतिकी आवश्यकता हो सकती है।

ऊपर दिये हुए पत्रके लेखकका रास्ता तो सीधा है। वह अभी अविवाहित हैं और उन्होंने ब्रह्मचर्य-पालनका सचमुच निश्चय कर लिया हो तो फिर वह व्याहके बंधनमें बंधें ही क्यों? मां-बाप और दूसरे सगे-सम्बन्धी तो अपने अनुभवके बलपर यह कहेंगे ही कि एक युवकका ब्रह्मचर्य-धारणकी बात करना समुद्र-मंथन करके तैरना है। यों कहकर, धमकी देकर, बिगड़कर और दण्ड देकर भी उसे ब्रह्मचर्यके शुभ संकल्पसे डिगानेकी कोशिश करेंगे। पर जिसके लिए ब्रह्मचर्यका भंग ही सबसे बड़ा दण्ड हो, साम्राज्य पानेका प्रलोभन भी जिसे ब्रह्मचर्यका भंग करनेके लिए तैयार नहीं कर सकता, वह किसी भी धमकीसे डरकर क्यों व्याह करेगा? जिसका आग्रह इतना तीव्र नहीं, जिसने ब्रह्मचर्य आदि संयमका इतना बड़ा मूल्य न आंका हो उसके लिए मैंने वह वाक्य नहीं लिखा है जिसे लेखकने उद्धृत किया है।

: १७ :

# मां-बापकी ज़िम्मेदारी

एक शिक्षक लिखते हैं :

"आपने युवकोंके दोषके बारेमें लिखा है। उसके लिए मुझे तो उनके मां-बाप ही जिम्मेदार मालूम होते हैं। बड़ी उम्रवाले बच्चोंके मां-बाप भी, जो बच्चे पैदा करते चले जाते हैं, इसका नतीजा क्या होगा? ऐसे ब्याहको व्यभिचार कहना क्या अनुचित होगा? एक बच्चा मांकी मृत्युके बाद पिताके पास सोया करता था। कुछ दिन बाद पिताने दूसरा विवाह कर लिया और नई पत्नीके साथ भीतरसे किवाड़ बन्द कर सोने लगे। बच्चेको कुतूहल हुआ कि पिताजी अब मेरे साथ क्यों नहीं सोते? मेरी मां जब जीती थी तब तो हम तीनों जने एक साथ सोते थे, अब नई मांके आनेपर पिताजी मुझे साथ क्यों नहीं सुलाते? बच्चेका कुतूहल बढ़ता गया। उसने किवाड़की दरारमेंसे झांककर देखनेकी सोची। दरारमेंसे जो दृश्य उसने देखा उसका उसके मनपर क्या असर हुआ होगा?

"पर समाजमें यह बात सदा होती रहती है। यह मिसाल मेरे दिमागकी उपज नहीं है। यह तो एक १३-१४ बरसके बालकसे सुना हुआ वृत्त है। जो जन-समाज बचपनमें ही यों आत्मनाशके रास्तेपर लगेगा वह स्वराज्य कैसे ले सकेगा? या मिल जानेपर उसकी रक्षा कर सकेगा? हर एक मां-बाप, शिक्षक, गृहपति, बालचर-मण्डलका नायक ऐसा न होने देनेकी सावधानता रखे तो कैसा हो? छोटी उम्रमें ब्रह्मचर्यका अर्थ समझना अक्सर कठिन होता है। बहुतसे लड़कोंको बटोरकर ब्रह्मचर्यपर व्याख्यान देनेसे यह बात कहीं अच्छी जान पड़ती है कि हर एक बालकका विश्वास-भाजन और सच्चा मित्र बनकर इसका पता लिया जाय कि बचपनमें ही

उसका मन सदाचारकी ओर झुक जाय। बच्चेके मनमें कुविचारका प्रवेश ही न हो इसका कोई उपाय तो होगा ही ?

"अब बड़ी उम्रवालोंकी बात सुनिए। जो समाज, जो जाति, गैर-बिरादरीकी स्त्रीके हाथका भोजन करनेवालेको जातिसे बाहर कर देती है, वही जाति पर-स्त्रीका संग करनेवालेका बहिष्कार क्यों नहीं करती ? जो जाति राजनीतिक सभा-सम्मेलनमें अछूतोंके साथ बैठ आनेवालेको दण्ड देती है वही व्यभिचारियोंको दण्ड क्यों नहीं देती ? इसका कारण मुझे तो यही जान पड़ता है कि आत्मशुद्धि करने बैठें तो हर एक जातिकी देह बहुत दुबली हो जाय। दुबली-पतली देहमें भी बलवान आत्मा रह सकती है, इसका ज्ञान उसे कहां है ? बहुत-सी जातियोंके मुखिया, चौधरीतक शराब या व्यभिचारके व्यसनमें फंसे होते हैं। इसलिए अपने ही पांवोंपर कुल्हाड़ी मारनेके डरसे वे उस ओरसे तो आंखें बन्द किये रहते हैं और दूसरोंको बिरादरीसे बाहर करनेके लिए हर वक्त कमर कसे तैयार रहते हैं। यह समाज कब सुधरेगा ? जिस देशको राजनीतिक उन्नति करनी हो वह पहले अपनी सामाजिक उन्नति न कर ले तो राजनीतिक उन्नति आकाश-कुसुम-जैसी ही है।"

इस लेखमें बहुत तथ्य है यह तो सभी स्वीकार करेंगे। बच्चोंके बड़े हो जानेपर उसी पत्नीसे या वह मर जाय तो नया घर बसाकर बच्चे पैदा करनेसे बच्चोंकी हानि होती है। इसे मनवानेके लिए दलील देनेकी जरूरत नहीं। पर इतना संयम न हो सके तो भी पिताको इतना तो करना ही चाहिए कि बच्चोंको अलग कमरेमें रखे या खुद ऐसी जगह सोये, जहांसे बच्चे न कुछ सुन सकें, न देख सकें। इसमें कुछ सभ्यता तो रहेगी ही। बचपन सर्वथा निर्दोष, निर्विकार होना चाहिए; पर मां-बाप विलासिताके वश होकर उसे दोषमय बना देते हैं। वानप्रस्थाश्रमकी प्रथा बालकोंको नीतिमान, स्वतंत्र और स्वावलम्बी बनानेमें बहुत उपयोगी हो सकती है।

शिक्षकोंके लिए लेखकने जो सूचना दी है वह उचित तो है ही, पर जहां ५०-६० लड़कोंका एक दरजा हो वहां शिष्योंके साथ शिक्षकका सम्बन्ध अक्षर-ज्ञान देने-भरका ही होता है। वहां शिक्षक चाहे तो भी शिक्षार्थियोंके

साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध कैसे जोड़ सकता है? फिर जहां पांच-सात शिक्षक पांच-सात विषय सिखाते हों वहां बालकोंके सदाचारकी जिम्मेदारी कौन उठायेगा; और फिर ऐसे शिक्षक ही कितने मिलेंगे जो बालकोंको सदाचार-पथपर लाने या उनका विश्वास-भाजन बननेकी योग्यता रखते हों? इसमें तो शिक्षाका सारा प्रश्न उपस्थित हो जाता है। पर उसकी चर्चाका यह स्थान नहीं।

समाज भेड़ोंके झुंडकी भांति बिना सोचे, बिना इधर-उधर देखे आगे बढ़ता जा रहा है, और कुछ लोग इसीको प्रगति मान रहे हैं। वे इस बातको जानते हैं कि स्थिति ऐसी भयानक है तो भी हमारा वैयक्तिक रास्ता आसान है। उन्हें अपने क्षेत्रमें जितना बन पड़े उतना नीतिका प्रचार करना चाहिए। सबसे पहले तो वे अपनेमें ही प्रचार करें। दूसरोंके दोष देखते समय हम खुद बहुत भलेसे लगने लगते हैं। पर अपने दोषोंको देखें तो हम खुद हमींको कुटिल और कामी दिखाई देंगे। दुनियाका काजी बननेकी बनिस्बत खुद अपना काजी बनना अधिक लाभदायक होता है और वैसा करते हुए हमें दूसरोंके लिए भी रास्ता मिल जाता है। 'आप भले तो जग भला' का एक अर्थ यह भी है। तुलसीदासने सन्तपुरुषको जो पारस-मणि कहा है वह गलत नहीं है। सन्त-पद प्राप्त करनेका प्रयत्न करना हम सबका फर्ज है। सन्त होना किसी अलौकिक पुरुषके लिए आकाशसे उतरा हुआ प्रसाद नहीं है, बल्कि हर आदमीका कर्त्तव्य है। यही जीवनका रहस्य है।

## : १८ :

# कामको कैसे जीतें ?

काम-विकारको जीतनेका प्रयत्न करनेवाले एक भाई लिखते हैं :

"आपकी 'आत्म-कथा'का पहला खण्ड पढ़नेसे बहुत-सी कामकी बातें मालूम हुई हैं। आपने कोई बात छिपा नहीं रखी है, इसलिए मैं भी आजसे कोई बात छिपा रखना नहीं चाहता।' 'नीति-नाशकी ओर' पुस्तकभी पढ़ी। इससे यह मालूम हुआ कि विषय-वासनाको जीतना खासतौरसे क्यों जरूरी है। पर यह वासना इतनी बुरी है कि योगवासिष्ठ और स्वामी रामतीर्थ तथा स्वामी विवेकानन्दकी पुस्तकें पढ़ते समय तो सबकुछ निस्सार जान पड़ता है; पर उन्हें बन्द किया नहीं कि विषय-वासनाएं आ घेरती हैं। आंख, नाक, कान, जीभको तो किसी तरह जीत भी सकते हैं, क्योंकि आंख बंद करते ही उसके विषयोंका अभाव हो जाता है। दूसरी इन्द्रियोंके साथ भी ऐसा कर सकते हैं। पर जननेन्द्रियका तो रास्ता ही जुदा दिखाई देता है। जब वह सताती है तब जान पड़ता है—मैंने जो-कुछ पढ़ा उसका जैसे कुछ भी मूल्य न हो। मेरा आहार सात्विक है। एक ही समय खाता हूं, रातमें केवल दूधपर रहता हूं। फिर भी काम-वासना किसी तरह नहीं जाती। इसका कारण समझमें नहीं आता। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने एक जगह कहा है—"आहार न करनेवाला देहधारी आदमी इन्द्रियोंके विषयोंसे तो मुक्त हो जाता है; पर विषयोंकी आसक्तिसे मुक्त नहीं होता। उससे निवृत्ति तो परमात्माके दर्शन होनेसे ही होती है।"[1]

"इस प्रकार जब ईश्वरके दर्शन हों तभी विषयोंकी आसक्तिसे छुटकारा

---

[1] विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्ज्यं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।

मिल सकता है, और चूंकि ईश्वरके दर्शन हो नहीं सकते, इसलिए विषयोंसे निवृत्ति भी नहीं हो सकती। यह है मेरी परेशानी। ऐसी दशामें क्या किया जाय ? क्या आप मुझ-जैसे विषय-जालमें फँस जानेवालेको कोई रास्ता नहीं बतायेंगे ?

"ऐसे साधु-सन्त अवश्य होंगे जो ऐसे जनोंको रास्ता बता सकें। पर वे मुझे मिलेंगे कैसे ? क्योंकि आजकल तो यह जानना ही कठिन है कि सच्चा साधु कौन है।

"इस जिज्ञासाका उत्तर कृपाकर 'नवजीवन' द्वारा दें। जिससे कोई सही रास्ता पकड़ा और प्रभुको पानेमें विघ्न-रूप विषयोंको जीता जा सके।

"अरसेसे यह बात आपसे पूछनेको जी चाहता था; पर हिम्मत न होती थी। मगर जब आपकी 'आत्म-कथा' पढ़ी तो जान पड़ा कि ऐसी बातें आपसे पूछना अनुचित न होगा। यह भी समझमें आया कि प्रभुकी प्राप्तिकी राहमें जो कठिनाइयां दिखाई दें, उनका उपाय पूछनेमें शर्म न करनी चाहिए।"

जो दशा इस भाईकी है वही बहुतोंकी है। कामको जीतना कठिन अवश्य है पर अशक्य नहीं है। परन्तु जो कामको जीत लेता है वह संसारको जीत लेता है और संसार-सागरको तर जाता है। यह भगवान्‌का वचन है। इससे हम जान सकते हैं कि कामको जीतना दुनियामें सबसे कठिन बात है। ऐसी वस्तुको पानेके लिए धीरजकी बहुत आवश्यकता है। इसे काम-जयका प्रयत्न करनेवाले सभी लोग स्वीकार नहीं करते। अक्षर-ज्ञानके अभ्यासमें अध्यवसाय, धीरज और ध्यानकी कितनी जरूरत है, इसे हम जानते हैं। उसपरसे त्रिराशिका हिसाब लगायें तो हमें मालूम हो जाय कि अक्षर-ज्ञानकी प्राप्तिमें धीरज आदिकी जितनी आवश्यकता होती है कामको जीतनेमें उससे अगणित गुना अधिक धीरज अपेक्षित है।

यह तो हुई धीरजकी बात। पर कामके जीतनेके उपायके विषयमें भी तो हम इतने ही उदासीन रहते हैं। मामूली बीमारीको हटानेके लिए तो हम सारी दुनिया छान डालते हैं, डाक्टरोंके यहां दौड़नेमें एड़ियां घिस डालते हैं, जन्तर-मन्तर भी नहीं छोड़ते। पर कामरूपी महाव्याधिसे छूटनेके लिए हम सब उपाय नहीं करते। थोड़ा उपचार किया कि थककर बैठ

जाते हैं और उलटा ईश्वर या इलाज वतानेवालेके साथ यह शर्त करने लगते हैं कि इतनी चीजें तो हमसे नहीं छूटने की, फिर भी आप हमारा काम-विकार मिटा दें। इसका फल यह हुआ है कि काम-विकारसे छूटनेके लिए हमारे भीतर सच्ची व्याकुलता नहीं है। उसके लिए सर्वस्व-त्याग करनेको हम तैयार नहीं। यह शिथिलता विजय-प्राप्तिके मार्गमें सवसे वड़ी वाधा है। यह सही है कि निराहार रहनेवालेके विकार दव जाते हैं, पर आत्म-दर्शनके विना आसक्ति नहीं जाती। पर उक्त श्लोकका अर्थ यह नहीं है कि कामको जीतनेमें निराहार-व्रतसे कोई सहायता नहीं मिलती। उसका मतलव तो यह है कि निराहार रहते हुए कभी थको ही नहीं और ऐसी दृढ़ता तथा लगनसे ही आत्म-दर्शन हो सकता है। वह हो जानेपर आसक्ति भी चली जायगी। ऐसा अनशन किसीके कहनेसे नहीं किया जा सकता। दिखावेके लिए भी नहीं किया जा सकता। इसमें तो मन, वचन और काया तीनोंका सहयोग होना चाहिए। यह होनेपर प्रभुका प्रसाद अवश्य प्राप्त होगा और वह मिल गया तो अन्तमें विकार-शान्ति होकर ही रहेगी।

पर निराहारसे पहले और वहुत-से उपाय करने होते हैं। उनसे विकार शांत न हुए तो ढीले जरूर पड़ जायंगे। भोग-विलासके प्रसंग-मात्रका त्याग कर देना चाहिए। उनकी ओर मनमें अरुचि उत्पन्न करनी चाहिए। इसलिए कि अरुचि या विरागके विना त्याग केवल ऊपरी त्याग होगा और इस कारण टिक न सकेगा। भोग-विलास किसे कहें यह वतानेकी जरूरत न होनी चाहिए। जिस-जिस चीजसे विकार उत्पन्न हों, वे सभी त्याज्य हैं।

आहारका प्रश्न इस विषयमें वहुत विचारणीय है। मेरी अपनी राय यह है कि जो अपने विकारोंको शान्त करना चाहता हो उसे घी-दूधका इस्तेमाल थोड़ा ही करना चाहिए। वनपक्व अन्न खाकर निर्वाह किया जा सके तो आग पर पकाई हुई चीजें न खायें या थोड़ी खायें। फल और वहुत-सी साग-सब्जियां कच्ची, विना पकाये खाई जा सकती हैं और खानी चाहिए। हां, कच्ची सब्जीकी मात्रा थोड़ी रहे। दो-तीन तोला कच्ची सब्जी आवश्यक पोषणके लिए काफी है। मिठाइयां और मिर्च-मसाले विलकुल ही छोड़

देने चाहिए। आहारके विषयमें इतनी सूचनाएं दे रहा हूं; पर जानता हूं कि केवल आहारसे ही ब्रह्मचर्यका पूर्ण पालन नहीं हो सकता। परन्तु विकारोत्तेजक वस्तुएं खाने-पीनेवालेको तो ब्रह्मचर्य निभा सकनेकी आशा ही न रखनी चाहिए।

: १६ :

# काम-रोगका निवारण

विलियम आर० थर्स्टन नामके लेखकने विवाह-विषयपर जो पुस्तक लिखी है वह इस योग्य है कि हर स्त्री-पुरुष उसको ध्यानपूर्वक पढ़े, समझे। (उसका सारांश परिशिष्टमें दिया गया है।) हमारे देशमें १५ बरसके लड़केसे लगाकर ५० तकके पुरुष और इसी या इससे भी कम उम्रकी लड़कीसे लगाकर ५० तककी स्त्रीकी भी यह धारणा रहती है कि संभोग अनिवार्य है। उसके बिना रहा ही नहीं जा सकता। इससे दोनों विह्वल रहते हैं, एक-दूसरेका विश्वास नहीं करते। स्त्रीको देखकर पुरुषका दिल हाथमें नहीं रहता और पुरुषको देखकर स्त्रीकी भी वही दशा होती है। इससे कितने ही ऐसे रिवाज पैदा हो गये हैं जिनकी कृपासे स्त्री-पुरुष सभी निर्बल, निरुत्साही और रोगी हो रहे हैं। हमारा जीवन इतना हीन हो गया है जितना हीन मनुष्यका जीवन न होना चाहिए।

इस वातावरणमें रचे हुए शास्त्रोंमें भी ऐसे आदेश और विश्वास देखनेमें आते हैं जिनके फलस्वरूप स्त्री-पुरुषको परस्पर ऐसा व्यवहार रखना पड़ता है, जैसे वे एक-दूसरेके दुश्मन हों। कारण यह कि एकको देखकर दूसरेका मन बिगड़ जाता है या बिगड़ जानेका डर रहता है।

इस धारणा और उसके आधारपर बने रिवाजोंकी बदौलत जीवन या तो विषय-भोगमें या उसके सपने देखनेमें चला जाता है और दुनिया हमारे लिए जहरसे कड़वी हो जाती है।

होना तो यह चाहिए था कि मनुष्यमें भला-बुरा सोचने-समझनेकी शक्ति होती है इसलिए पशुकी तुलनामें उसमें अधिक त्याग-शक्ति और संयम हो। पर हम रोज ही देखते हैं कि नर-मादाके संयोगकी मर्यादाका पशु जितना पालन करता है मनुष्य उतना नहीं करता। सामान्य रीतिसे

स्त्री-पुरुषके बीच मां-बेटे, भाई-बहन या बाप-बेटीका संबंध होना चाहिए। यह तो खुली बात है कि पति-पत्नीका संबंध अपवाद-रूपमें ही हो सकता है और अगर भाईसे बहनके या बहनसे भाईके टरनेका कारण हो सकता हो तो पुरुष दूसरी स्त्रीसे या स्त्री दूसरे पुरुषसे टर सकती है। पर इसके विपरीत स्थिति यह है कि भाई-बहनको भी आपसमें संकोच रखना पड़ता है और रखना उन्हें सिखाया जाता है।

इस दयनीय दशा अर्थात् विषय-वासनाकी सड़ांधसे भरी हुई हवासे निकल जाना हमारे लिए निहायत जरूरी है। हमारे अन्दर इस वहमने जड़ जमा ली है कि इस वासनासे निकलना नामुमकिन बात है। उसकी जड़ उखाड़ देना ही पुरुषार्थ है और वह हमसे हो सकनेवाली बात है, यह दृढ़ विश्वास हमारे हृदयमें उत्पन्न होना चाहिए।

यह पुरुषार्थ करनेमें श्री ब्यूरोकी नन्हीं-सी पुस्तकसे बड़ी मदद मिलेगी। लेखककी यह खोज मुझे तो ठीक जान पड़ती है कि अस्वाभाविक काम-वासनाकी जड़ विवाह-विषयक वर्तमान धारणा और उसके आधारपर रचित प्रथाएं हैं जो पूर्व-पश्चिम सर्वत्र व्याप रही हैं। स्त्री-पुरुषका रातमें एकान्तमें एक कमरेमें और एक बिस्तरपर सोना दोनोंके लिए घातक और काम-वासनाको व्यापक तथा सार्वजनिक वस्तु बना देनेका जबर्दस्त साधन है। एक तरफ तो सारी विवाहित दुनिया इसी नियमका अनुसरण करे और दूसरी ओर धर्मोपदेशक और सुधारक संयमका उपदेश करें। यह आसमानमें थिगली लगाना नहीं तो क्या है? ऐसे विषय-वासनासे भरे हुए वातावरणमें संयमके उपाय व्यर्थ जायं तो इसमें कोई अचरजकी बात नहीं। शास्त्र पुकार-पुकारकर कहते हैं कि समागम केवल सन्तानकी कामनासे ही होना चाहिए। इस आज्ञाका उल्लंघन हम प्रतिक्षण किया करते हैं। फिर भी जब रोग हमें सताते हैं तो उनके कारण दूसरी जगह ढूंढे जाते हैं। इसीको कहते हैं—'गोदमें लड़का और शहरमें ढिंढोरा'। इस सूर्यके प्रकाश-जैसी स्पष्ट बातको हमने समझ लिया हो तो—

१. हर एक पति-पत्नी आजसे प्रतिज्ञा कर लें कि हम एकान्तमें न सोयेंगे और दोनोंकी इच्छा हुए बिना सन्तानोत्पादन-व्यापारमें न लगेंगे।

जब संभव हो तब दोनों अलग-अलग कमरेमें सोयें, गरीबीके कारण यह मुमकिन न हो तो पति-पत्नी दूर-दूर और अलग-अलग खाटोंपर सोयें और बीचमें किसी मित्र या कुटुम्बीको सुला लें।

२. समझदार मां-बाप अपनी लड़की ऐसे घरमें देनेसे साफ इनकार कर दें जहां उसे अलग कमरा और अलग खाट न मिल सके। व्याह एक प्रकारकी मित्रता है। स्त्री-पुरुष एक-दूसरेके दुःख-सुखके साथी बनते हैं, पर व्याह हो जानेके मानी यह नहीं हैं कि पति-पत्नी पहली ही रातको विषय-भोगमें आकंठ निमग्न होकर अपनी जिन्दगीकी बरबादीकी नींव खोद लें। यह शिक्षा लड़के-लड़कियोंको मिलनी चाहिए।

थर्स्टनकी खोज स्वीकार करनेका अर्थ यह है कि उसके मनमें जो नई, आश्चर्यजनक, कल्याणकर और शांतिदायिनी कल्पना निहित है उसपर मनन किया जाय और व्याहके विषयमें प्रचलित विचारोंमें जो परिवर्तन आवश्यक हैं उसे हम समझ लें। तभी इस खोजका लाभ हमें मिल सकेगा। जो लोग इस खोजको हजम कर सके हों वे बाल-बच्चेवाले हों तो अपने बच्चोंकी तालीम और घरका वातावरण बदल दें।

यह समझनेके लिए हमें थर्स्टनकी शहादतकी जरूरत न होनी चाहिए कि हम विषय-सुख भोगते हुए भी बच्चोंके बोझसे बचे रहें; इसके लिए जिन बनावटी उपायोंका जोर-शोरसे प्रचार किया जा रहा है वे अति हानिकर हैं। ये उपाय हिंदुस्तान-जैसे देशमें चल कैसे सकते हैं, यही समझना कठिन है। पढ़े-लिखे लोग हिन्दुस्तानके दुर्बलता भरे वातावरणमें इन उपायोंसे काम लेनेकी सलाह कैसे देते हैं, मेरी समझमें यह बात आती ही नहीं।

# परिशिष्ट

## : १ :

## सब रोगोंका मूल

विलियम राबर्ट बर्स्टन नामके अमरीकन लेखकने 'फिलासफी ऑव मैरेज' (विवाहका तत्त्व-ज्ञान) नामकी छोटी-सी पुस्तक लिखी है, जिसे न्यूयार्कके स्टिफानी प्रेस और मद्रासकी गणेशन् कम्पनीने भी प्रकाशित किया है। प्रकाशकके कथनानुसार श्री बर्स्टन, संयुक्त राष्ट्रकी सेनामें मेजर थे और लगभग दस बरसतक काम करके १९१९ में अवकाश ग्रहण किया तबसे न्यूयार्क नगरमें रहते हैं। १८ बरसतक उन्होंने जर्मनी-फ्रांस, फिलि-पाइन द्वीपपुंज, चीन और अमरीकामें विवाहित स्त्री-पुरुषोंकी स्थिति और विवाहके नियमों, प्रथाओंके प्रभावका गहरा अध्ययन किया। अपने "निजके अवलोकनके अतिरिक्त वह प्रकृति-शास्त्र और स्त्री-रोगोंके विशेषज्ञ सैकड़ों डाक्टरोंसे मिले और पत्र-व्यवहार करते रहे। इसके सिवा उन्होंने फौजमें भरती होनेके उम्मीदवारोंकी शारीरिक योग्यताकी जांचके पत्रों और सामाजिक आरोग्य-रक्षक मण्डलोंके इकट्ठे आंकड़ोंका भी समुचित उपयोग किया है। लेखकने सैकड़ों डाक्टरोंसे कैसे प्रश्न किये और उनके कैसे जवाब उसे मिले, यह उसने बताया है—

प्रश्न—आजकल विवाहित स्त्री-पुरुषोंमें गर्भावस्थामें भी संभोगका रिवाज है या नहीं?

इस प्रश्नका उत्तर लगभग सभी डाक्टरोंने यही दिया कि यह रिवाज है।

प्र०—ऐसे संभोगसे गर्भपात या असामयिक प्रसव और प्रसूताके रक्तमें विष-प्रवेश (ब्लड पॉयजनिंग) की संभावना है या नहीं?

उ०—अवश्य है।

प्र०—इस संभोगके फलस्वरूप बच्चोंका विकलांग होना संभव है या नहीं ?

उ०—बहुतसे डाक्टर तो गर्भावस्थामें भी कुछ महीनोंतक संभोगकी इजाजत देते ही हैं। वे इसके खिलाफ राय कैसे देते। पर सैंकड़े २५ने लिखा है कि इससे विकलांग बच्चे पैदा होते हैं।

प्र०—विकृत अंगवाले बच्चे पैदा होनेका कारण गर्भावस्थाका समागम न हो तो दूसरा क्या हो सकता है ?

इसके उत्तरोंमें बहुत मत-भेद है। बहुतेरे तो लिखते हैं कि हम इसका कारण नहीं बता सकते।

प्र०—आजकलकी पढ़ी-लिखी स्त्रियां क्या गर्भाधान रोकनेके साधनोंका व्यवहार सचमुच करती हैं ?

उ०—हां।

प्र०—इन साधनोंसे और कुछ नहीं तो स्त्रीकी जननेन्द्रियकी अपार हानि होनेकी संभावना तो है ही ?

सैंकड़े ७५ डाक्टरोंकी रायमें यह संभावना है।

इसके अतिरिक्त लेखकने कितने ही चौंकानेवाले आंकड़े दिये हैं जो जानने लायक हैं। सन् १६२० ई० में अमरीकाकी सरकारने सेनामें भरती होनेवालोंके शारीरिक दोषोंके विषयमें एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसमें बताया गया है कि—

२५ लाख १० हजार आदमियोंकी फौजमें भरती होनेकी योग्यताकी जांच की गई।

उनमेंसे १२ लाख ८६ हजारमें कोई-न-कोई शारीरिक या मानसिक दोष निकला।

५ लाख ८६ हजार आदमी सेना-सम्बन्धी सभी कामोंके लिए अयोग्य पाये गए।

इन उम्मीदवारोंकी उम्र १८ से ४५ सालके बीच थी।

इतनी जांच और अनेक देशोंकी स्थितिके अवलोकनके फलस्वरूप

लेखकने जो महत्त्वपूर्ण नतीजे निकाले हैं, वे सिद्धांत उसीके शब्दोंमें नीचे दिये जा रहे हैं :—

१. पुरुष स्त्रीको रोटी-कपड़े और रहनेको घर देता है इसलिए वह उसकी दासी बनकर रहे और चूंकि वह उसकी व्याहता कहलाती है इसलिए एक ही कमरेमें रहकर या एक ही बिस्तरपर सोकर नित्य उसकी काम-वासनाकी तृप्तिका साधन बनती रहे, प्रकृति हर्गिज ऐसा नहीं चाहती।

२. विवाह-बंधनमें बंधनेसे ही पुरुषकी विषय-वासनाकी तृप्ति स्त्रीपर फर्ज हो जाती है, यह माननेका रिवाज दुनियामें सब कहीं पड़ गया है। इस प्रथाके फलस्वरूप स्त्रीको रात-दिन अमर्यादित विषय-भोगका साधन बने रहना और विवाहित स्त्रियोंमेंसे सौ पीछे ९०को अर्थतः वेश्या बन जाना पड़ता है। यह स्थिति पैदा होनेका कारण यह है कि वेश्यावृत्ति स्वाभाविक और उचित मान ली गई है, क्योंकि व्याहका कानून यही माननेको कहता है। पतिका प्रेम बनाये रखनेके लिए भी यह वृत्ति स्वीकार करना स्त्रीपर फर्ज माना जाता है।

इस अंकुशरहित विषय-भोगके अनेक भयावह परिणाम होते हैं—

१. स्त्रीका नाड़ी-संस्थान—उसके दिल-दिमाग बहुत ही कमजोर हो जाते हैं, वह जवानीमें बुढ़िया बन जाती है, उसका शरीर रोगोंका घर और स्वभाव चिड़चिड़ा, अस्थिर, अशान्त हो जाता है और वह बच्चोंकी सम्हाल भी ठीकसे नहीं कर सकती।

२. गरीबोंके घर इतने बच्चे पैदा होते हैं कि उनकी पूरी परवरिश और सम्हाल नामुमकिन होती है। ऐसे बच्चोंको रोग लग जाते और बड़े होनेपर वे चोर-उचक्के बनते हैं।

३. ऊँचे वर्गवालोंमें निरंकुश विषयभोगकी खातिर गर्भाधान न होने देने और गर्भपातके साधन काममें लाये जाते हैं। इन साधनोंसे काम लेना साधारण-वर्गकी स्त्रियोंको सिखा दिया गया तो राष्ट्र रोगी, [illegible] और भ्रष्ट हो जायगा और अन्तमें उसका विनाश होगा।

४. अति संभोगसे पुरुषका पुरुषत्व नष्ट होता है, वह मन लम्पट

भी नहीं रह जाता कि मेहनत-मजदूरी करके अपना निर्वाह कर सके और अनेक रोगोंके फलस्वरूप उसे समयसे पहले ही परलोकका रास्ता लेना पड़ता है। अमरीकामें आज विधुरोंसे विधवाओंकी संख्या २० लाख अधिक है। उसमें उनकी संख्या थोड़ी ही है जो युद्धके कारण विधवा बनी हैं। विवाहित पुरुषोंका बड़ा भाग ५०की उम्रतक पहुंचनेके पहले ही जर्जर हो जाता है।

५. अति संभोगके फलस्वरूप स्त्री-पुरुष दोनोंके भीतर एक प्रकारकी हताशता, अपने-आपको व्यर्थ समझनेका भाव उत्पन्न हो जाता है। दुनियामें जो आज इतनी गरीबी दिखाई देती है, बड़े शहरोंमें जो गरीबोंके मुहल्ले, गंदी अंधेरी गलियां हैं, उनका कारण पैसा मिलनेवाले कामका अभाव नहीं है बल्कि वर्तमान विवाह-नियमोंके फलरूप निरंकुश संभोग है।

६. गर्भावस्थामें जो स्त्रीको पुरुषकी वासना-तृप्तिका साधन बनना पड़ता है यह मानव-जातिके भविष्यके लिए अति भयावह है।

इस अवस्थाका संभोग मनुष्यको पशुसे भी हीन बना देता है। गाभिन गाय सांडको अपने पास कभी आने ही न देगी। फिर भी अगर सांड बलात्कार करे तो वह गाय जो बछड़ा जनेगी उसके तीन या पांच पांव होंगे अथवा दो पूंछें या दो सिर होंगे। समस्त प्राणि-सृष्टिमें अकेला मनुष्य ही यह मानता दिखाई देता है कि इस प्रकारके अत्याचारसे पशुओंमें जो परिणाम होते हैं वे मनुष्योंको न भुगतने होंगे। इस धारणाके मूलमें एक भ्रम है। वह यह कि पुरुषसे बहुत दिनोंतक अपनी विषय-वासना तृप्ति किये बिना रहा ही नहीं जा सकता। इस भ्रमकी जड़ भी साफ दिखाई देती है। जब वासनाओंको जगानेवाला साथी सदा अपनी बगलमें मौजूद हो तब पुरुषसे भोगकी भूख बुझाये बिना कैसे रहा जायगा ?

पर डाक्टरोंकी रायों और अपने निजके अनुभव-अवलोकनसे भी जान लिया गया है कि गर्भाधानसे पहले अति संभोग अगर अनिष्ट-मूलक है तो गर्भावस्थाका संभोग तो सीधा नरकका द्वार है। इसके परिणाम-स्वरूप बच्चोंमें पागलपनतककी खराबी पैदा हो जानेका डर रहता है और खुद स्त्रीको तो अपार कष्ट होता है, क्योंकि गर्भ-धारणकी दशामें किसी स्त्रीको संभोगकी इच्छा नहीं होती।

लेखकने इसके बाद चीन, हिन्दुस्तान और अमरीकामें एक ही कमरेमें अनेक स्त्री-पुरुषोंके सोनेसे जो अनीति और निर्वीर्यता फैल रही है उसकी चर्चा की है और इस बुराईका इलाज बताया है।

उसके बताये हुए कुछ उपाय तो ब्याहके कानूनमें सुधार करनेके हैं, पर उसने ऐसे उपाय भी बताये हैं जिनका करना मनुष्यके हाथमें है। कानून तो जब सुधरना होगा सुधरेगा। पर कुछ सुधार तो आदमीके अख्तियारकी बात है ही। जैसे—

१. सन्तानकी कामनाके बिना स्त्री-पुरुषका संभोग न होना चाहिए, इस प्राकृतिक ज्ञानका खूब प्रचार करना।

२. स्त्रीको सन्तानकी इच्छा न हो तो पुरुषको केवल उसका पति होनेके नाते ही उसका स्पर्श करनेका अधिकार नहीं मिलता, इस सिद्धान्तका प्रचार करना।

३. विवाह-बंधनमें बंधी होनेके कारण ही पतिके साथ एक ही कोठरी और एक ही बिस्तरपर सोना स्त्रीपर फर्ज नहीं है, बल्कि सन्तानोत्पादनके हेतुके बिना उसका इस तरह सोना अपराध है—इस ज्ञानका प्रचार करना।

लेखकका कहना है कि इन नियमोंका पालन किया जाय तो दुनियाके आधे रोग चले जायं—गरीबी चली जाय, रोगी-विकलांग बच्चोंका पैदा होना बंद हो जाय, और स्त्री-पुरुषके जन-कल्याणके लिए पुरुषार्थ करनेका मार्ग उन्मुक्त हो जाय।

## एक महिलाके प्रश्न

'विवाहका तत्त्व-ज्ञान'के लेखकने अपनी कृति अपने मित्रोंके पास प्रेमोपहारके रूपमें भेजा होगा। उनमेंसे एक बहनने उसे पत्र लिखा। उसके उत्तरमें लेखकने एक दूसरी पुस्तिका लिख डाली, जिसमें उसके विचार अधिक स्पष्ट कर दिये गये हैं और अपने मतकी पुष्टि अकाट्य दलीलोंसे, अधिक सबल रूपमें की गई है। यह पुस्तक पहलीसे भी अधिक महत्त्ववाली और मननीय है।

उक्त बहनके पत्रका आशय, थोड़ेमें, इस प्रकार है—

"आपकी पुस्तकके लिए अनेक धन्यवाद। अतिशय विषय-भोग ही हमारे रोगोंका मुख्य कारण है, इसे अचूक रूपमें बतानेवाली आपकी पुस्तक पहली ही कही जा सकती है। काम-वासना महापुरुषोंमें भी होती है। कुछ महापुरुष उससे मुक्त भी होते हैं और कितने ही साधारण-जनोंमें वह अति प्रबल होती है। पर संभोगकी शारीरिक आवश्यकता कितनी है, मान ली हुई मानस आवश्यकता कितनी है और महज आदतसे पैदा होनेवाली आवश्यकता कितनी है, इसकी छान-बीन कर लेना जरूरी है। मिसालके तौर पर, यह जान लेना जरूरी है कि ह्वेलके शिकारके लिए समुद्रमें सुदूर गये हुए या ऐसे ही किसी अन्य कारणवश लम्बे अरसे तक स्त्रीसे जुदा रहनेवाले पुरुषके स्वास्थ्यपर इस विवशताके ब्रह्मचर्यका क्या असर होता है।

"दूसरी बात यह है कि अतिशय विषय-भोगसे होनेवाली हानिको तो मैं स्वीकार करती हूं; पर क्या गर्भाधान रोकनेके कृत्रिम साधन भी अनावश्यक हैं? गर्भपात या अवैध सन्तानका जन्म देनेके पापसे क्या यह अच्छा नहीं है कि बाह्य साधनोंसे काम लेकर सन्तानोत्पत्ति होने ही न दी जाय। प्रकृतिके नियमके विरुद्ध चलनेवाला मनुष्य जनन-निरोधके उपायोंको काम लेनेके फलस्वरूप दुनियामें अपना नामलेवा छोड़े बिना मर जाय तो इसमें समाजका क्या बिगड़ता है?

"तीसरी बात, मान लीजिये, हम सभी संयमी बन गये। तो भी मोटे हिसाब हर एक दम्पतीके तीनसे अधिक बच्चे न हों तभी दुनियाकी आबादी हदके अन्दर रह सकती है। और इसका अर्थ यह होता है कि सारी जिन्दगीमें उन्हें दो-चार बार ही संभोग-सुख भोगनेका अवसर मिल सकता है। इतना संयम क्या साधारण आदमीके बसकी बात है? क्या स्वस्थ और बल-पौरुष-सम्पन्न पुरुष लम्बे अरसेतक संयम रख सकता है?

## दो कामनाएं

इस पत्रके उत्तरमें लेखकने जो पुस्तिका ('द ग्रेट सीक्रेट') लिखी उसका सार नीचे दिया जाता है—

"साधारण पुरुषमें आहारकी इच्छाके अतिरिक्त दो कामनाएं और

होती हैं—एक सती-सुन्दरी स्त्रीके साथ संभोगकी, दूसरी पुरुषार्थकी, अर्थात् धर्म, अर्थ और मोक्षकी । पहलीको तृप्त करनेकी इच्छा दूसरेकी प्रेरणा करती है । बहुतोंकी पुरुषार्थकी कामना व्याहके पहले ही, सहज-प्राप्त स्त्रीके साथ, काम-वासनाकी परितृप्ति कर लेनेसे मर जाती है। अधिकांशकी व्याहके बाद दो-चार बरसों ही में संभोगके अतिरेकसे मर जाती या मन्द हो जाती है । स्वस्थ और वीर्यवान पुरुषमें संभोगकी इच्छा प्रायः सदा बनी रहती है; पर पुरुषार्थकी कामना बलवती हो जाय तो काफी लंबे बरसोंतक वह दब भी जाती है । आवश्यकता है किसी महान् लक्ष्यकी । ऐसे लक्ष्यकी जिसकी सिद्धिमें मनुष्य अपनी सारी शक्ति लगा देनेका संकल्प कर ले ।

ऐसे लक्ष्य अनेक हैं । एक सामान्य लक्ष्य तो उत्तम सन्तान पैदा करना ही है । अपनी सहधर्मिणीकी स्वाभाविक सन्तानेच्छाको तृप्त करके उसे प्रसन्न रखकर स्वस्थ सन्तान उत्पन्न करना और उसके पालन-पोषण, पढ़ाने-लिखाने, उसे योग्य नागरिक बनानेमें लग जानेसे विषय-वासना अपने आप विदा हो जानी चाहिए। पर इन कर्तव्योंका पालन कर सकनेके लिए जरूरी होगा कि उसका शरीर भरा हुआ हो, वह शरीरसे काफी मेहनत-मशक्कत करे। इसके सिवा उसे स्त्रीके साथ एक खाटपर सोना भी बंद करना होगा ।

दूसरा लक्ष्य है कीर्तिका—लोक-कल्याण करके या कोई बड़ा पराक्रम करके नाम कमाना । हो सकता है कि नाम कमा लेनेके बाद मनुष्य यह भी चाहे कि उसे विषय-सुख अधिक अच्छी तरह भोगनेका मौका मिले; पर कीर्तिकी लालसा उस वक्त तो मूल वासनाको दबा ही देती है ।

स्त्री ही जातिके आदर्शोंकी जननी है । ये आदर्श स्त्रीसे ही पुरुषके मानसमें पहुंचते हैं, इनके परिपाककी प्रेरणा भी स्त्रीसे ही मिलती है । अतः मैं तो कहूंगा कि जिस समाजमें स्त्रीका मूल्य अधिक है—जिस समाजमें स्त्री उर्वशीके समान विजयके बसमें है, वह समाज अधिक उत्कर्षशाली है । जिस देशमें स्त्रीकी कीमत कम है, अर्थात् जहां स्त्रीकी प्राप्तिमें पुरुषको कुछ मेहनत नहीं करनी पड़ती उस देशमें गरीबी और गन्दगीकी बहुतायत

होती है। अतः जहां स्त्रीका मूल्य अधिक हो वहांके लोगोंको अधिक समृद्ध होना चाहिए।

आप जानना चाहती हैं कि ह्वेलके शिकारको गये हुए और पत्नीसे लंबे अरसे तक जुदा रहनेवाले पुरुषके स्वास्थ्यपर इस विवशताके ब्रह्मचर्यका असर क्या होता है। इन लोगोंको सख्त मेहनत करनी पड़ती है, इसलिए काम-वासनाकी अतृप्तिका उनके स्वास्थ्यपर तो कोई बुरा असर नहीं पड़ता। हाँ, जब उनके पास काफी काम नहीं रहता तब इस वासनाको अप्राकृतिक रूपमें तृप्त करनेके दुर्व्यसन उन्हें लग जाते हैं। शिकारसे लौटकर ये लोग अपनी सारी कमाई शराब और ऐयाशीमें उड़ा देते हैं, क्योंकि यही लक्ष्य लेकर ये शिकारके लिये जाते हैं।

## कृत्रिम साधन

कृत्रिम साधनोंसे सन्तानोत्पादन रोकनेका प्रश्न जो आपने उठाया है वह गंभीर है। उसका उत्तर जरा विस्तारसे देना होगा। अपनी खोजों और अवलोकनके बलपर इतना तो मैं जोर देकर कह सकता हूं कि इन साधनोंसे हानि नहीं होती इसका सबूत नहीं ही मिलता। हां, सफल और ज्ञानवान स्त्री रोग-चिकित्सकों और मानस-रोग-चिकित्सकोंके पास इसे साबित करनेके लिए जबर्दस्त मसाला मौजूद है कि इन साधनोंसे काम लेना शरीर-स्वास्थ्य और नीति दोनोंके लिए अति हानिकर है। और यह खुली बात है कि इस विषयमें एक-दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। सन्तानकी कामना न हो तो पति-पत्नीमेंसे किसीको भी संयमके लिए प्रेरित करनेवाली कोई शक्ति नहीं रहती। पुरुषका जी उस स्त्रीसे भर जाता है, उसकी पुरुषार्थकी कामना मंद पड़ जाती है। स्त्री उसे दूसरी स्त्रियोंके पास जानेसे रोकनेके लिए उसे अपना ही गुलाम बना रखना चाहती है। अरसे तक गर्भाधान न होने देनेसे उसकी अपनी भोगेच्छा भी भड़कती जाती है। नतीजा यह होता है कि पुरुष कुछ ही बरसोंमें निर्वीर्य हो जाता है और किसी भी रोगका सामना कर सकनेका बल उसमें नहीं रहता। इस निर्वीर्यतासे बचनेके लिए अकसर कुत्सित साधनोंसे काम लिया जाता है, जिससे स्त्री-पुरुषके मनमें

एक-दूसरेके लिए तिरस्कार उत्पन्न होता है और अन्तमें सम्बन्ध-विच्छेद या तलाककी नौबत आती है।

कैंसरके विशेषज्ञोंका कहना है कि इन कृत्रिम साधनोंका व्यवहार कैंसर रोगका भी कारण होता है। नारी-देहकी एक कोमलतम झिल्लीपर इन साधनोंका बहुत बुरा असर होता है—और उससे कितने ही रोग पैदा होते हैं। कितने ही प्रतिष्ठित डाक्टरोंका यह भी कहना है कि इन साधनोंको काममें लानेके कारण बहुत-सी स्त्रियां बांझ बन जाती हैं। उनका जीवन नीरस हो जाता है और संसार उनके लिए विषरूप हो जाता है।

## जज लिंडसेका भ्रम

हमारे जज लिंडसेने इन कृत्रिम साधनोंकी खोजको व्यापक रूप दे दिया है, पर उससे होनेवाले सर्वनाशका उन्हें पता नहीं है। 'वैज्ञानिक गर्भ-निरोध' को वह नई खोज मानते हैं—पर वह बहुत पुरानी चीज है। फ्रांसमें कम-से-कम एक सौ सालसे इस साधनका चलन है। उसकी दशा आज क्या है यह देखिये। उसकी राजधानी पेरिसमें ७० हजार तो ऐसी वेश्याएं हैं जिनके नाम वेश्याओंके रजिस्टरमें दर्ज हैं। 'अन रजिस्टर्ड' खानगी वेश्याओंकी संख्या उनसे कई गुनी है। उसके और नगरोंमें भी यह बुराई बुरी तरह फैल रही है। जननेन्द्रियके रोगोंका भी कोई हद-हिसाब नहीं है और लाखों स्त्रियां—विवाहित-अविवाहित दोनों—उनसे पीड़ित हो डाक्टरोंके दरकी खाक छान रही हैं। कितने ही वरसोंसे जन्म-संख्याकी औसत मृत्यु-संख्याके औसतसे बहुत नीची है। फ्रांसके लोग नीति-भ्रष्टताके लिए सारी दुनियामें बदनाम हो रहे हैं और फ्रेंच कुमारियां बुरदाफरोशोंके बाजारमें दिन-दिन अधिक संख्यामें पहुंच रही हैं।

सबसे भयावह बात तो यह है कि इन साधनोंका एक बार जहां पहलेसे प्रचार हुआ कि फिर इस गंदे ज्ञानका प्रचार रोकनेका कोई उपाय नहीं रहता। उसे रोकनेकी शक्ति भी किसीमें नहीं रह जाती। सबसे पहले ये बातें युवा-वर्गमें पहुंचती हैं। फ्रांसके वेश्यागृहोंमें कोमल वयकी कुमारी

और विवाहिता दोनों तरहकी अभागी स्त्रियोंके यौवन और चरित्रकी हाट लग रही है।

जज लिंडसे अपने देश (अमरीका) के युवा अपराधियोंका विचार करनेवाली अदालतमें अरसेतक न्यायाधीश रह चुके हैं। इन युवक अपराधियोंके बयानोंमें उन्हें जो तथ्य मिले उनका उन्होंने उलटा उपयोग किया, और अपनी पुस्तकमें उलटे साधनोंकी सलाह देकर सारी जनताको उलटे रास्तेपर लगा दिया।

पर अपनी ही पुस्तकमें उन्होंने जो तथ्य-प्रमाण दिये हैं उनका रहस्य उनकी समझमें क्यों न आया? वर्जीनिया एलिस नामका युवतीका पत्र उन्होंने अपनी पुस्तकमें उद्धृत किया है। वह बेचारी लिखती है कि मैं चार होशियार डाक्टरोंसे मिल चुकी और मेरे पति दूसरे दो डाक्टरोंकी सलाह ले चुके। इन छहों डाक्टरोंका कहना है कि गर्भ-निरोधके साधनोंको काममें लानेसे थोड़े दिनोंतक स्त्री-पुरुषके स्वास्थ्यपर कोई असर पड़ता भले ही न दिखाई दे; पर कुछ ही दिनमें दोनों हाथ मलने लगते हैं, और इस अनिष्टसे ऐसी व्याधिकी उत्पत्ति होती है, जिसका आपरेशन 'एपिंडिसाइटिस' (आंतका फोड़ा) और 'गालस्टोन' (पित्ताशयकी पथरी) के नामसे किया जाता है। पर असलमें तो कुछ और ही होता है। क्या ये डाक्टर झूठे हैं? ऐसी राय देनेमें तो उनका कोई लाभ नहीं। उलटा, कृत्रिम साधन काममें लाये जांय तो रोग बढ़ें और उनका रोजगार ज्यादा चले। पर ये डाक्टर अनुभवी, प्रतिष्ठित और लोकहितको समझनेवाले हैं।

जज लिंडसे और उनके पीछे चलनेवाले अब पूरी लगनके साथ इन साधनोंके प्रचारमें लग रहे हैं। यह प्रचार बढ़ता गया तो देशमें हजारों नीम हकीम इन साधनोंके लिए फिरते दिखाई देंगे और इससे राष्ट्रकी अपार हानि होगी।

लिंडसे महोदयने जनन-निरोधके साधनोंका प्रचार करनेके लिए एक मण्डल स्थापित कर लिया है और कहते हैं कि यह संस्था स्वर्गको धरतीपर उतार लायेगी। पर मैं तो मानता हूं कि वह दुनियाको नरक बना देगी। जन-साधारणमें इन साधनोंका प्रचार हुआ तो लोग बेमौत मरेंगे। घुल-

घुलकर, सिसक-सिसककर मरेंगे और शायद यह सत्यानाश देखकर ही आने-वाली पीढ़ियां इन साधनोंसे प्लेगकी तरह भागना सीखेंगी।

जज लिंडसेकी नीयत बुरी नहीं है। वह बेचारे तो यही चाहते हैं कि हर एक कुटुम्बमें उतने ही बच्चे पैदा हों जितने स्त्री चाहती हो और जितनेके पालन-पोषणका बोझ पुरुष उठा सके। उनका दूसरा उद्देश्य है कि स्त्रीमें संभोग-सुखकी स्वाभाविक इच्छा होती है, उसकी तृप्तिका समुचित साधन उसे मिल जाय। इस भावनाका भूत उनकी अदालतमें भग्न-वाहिनी निर्लज्ज छोकरियोंने उनके मानसमें घुसाया है। मैं तो यह मानता हूं कि उनकी अदालतमें आनेवाली लड़कियों-जैसी शहादतें देनेवाली लड़कियां अपवादरूप ही होंगी। मैं दूसरी बहुत-सी लड़कियोंसे मिला हूं। वे काम-वासनाकी बातोंको जज लिंडसेके इजलासपर शहादत देनेवाली लड़कियोंकी तरह कवित्व और तत्त्व-ज्ञानका पालिश चढ़ाकर तो कह ही नहीं सकतीं। बहुसंख्यक समझदार लड़कियां और माताएं जानती हैं कि यह मान्यता शुद्ध भ्रम है। पर जज लिंडसेके सामने कितने ही वर्षोंसे ऐसी कच्ची अक्लकी लड़कियां लगातार आ रही हैं। इससे उनके जैसा विवाहित अधेड़ उम्रका विद्वान् पुरुष भी रास्तेसे बहक गया और अनचाहे बच्चोंकी पैदाइश रोकनेकी पुस्तक लिख डाली, नहीं तो ऐसा कौन होगा जो इतना ज्ञान रखते हुए कालिजमें पढ़नेवाले लड़के-लड़कियोंको निर्भय होकर सहवास-सुख भोगनेकी सलाह देगा और इसके लिए कानून बनवानेका आंदोलन करेगा? उनका ज्ञान काम कर रहा होता तो उन्हें यह मालूम होता कि कितने सुन्दर, तेजस्वी युवक इस पापसे आत्मघातकी शिक्षा प्राप्त करते हैं, इसलिए कि उनका पुरुषार्थ विदा हो जाता है और उसके साथ-साथ जीनेकी इच्छा भी चली जाती है। उन्हें इसका पता न हो तो मानस रोगोंका इलाज करनेवाले उन्हें बता सकते हैं कि कच्ची उमरमें जन-नेन्द्रियको बहक जाने देना अच्छे भले युवकको नामर्द, चोर, उचक्का और लफंगा बना देता है। उनकी अक्ल मारी न गई होती तो भला वह लिखते कि पुरुषकी विषय-वासना तृप्त करना और उसकी वेश्या बनना स्त्रीका धर्म है?

इन अक्लके दुश्मनोंको कौन समझाये कि प्रजामें अगर जन्म-मरण बहुत बढ़ जाय तो उसे रोकनेका बस एक ही उपाय है—विषय-भोगसे निवृत्ति ! इनकी आंखें यह क्यों नहीं देख सकतीं कि पशुओंमें यही उपाय अमोघ है ? इनकी अकलमें यह बात क्यों नहीं आती कि इन ऊपरी उपायोंका अवलंबन स्त्रियोंको वेश्या और विषयगामिनी और पुरुषोंको निर्जीव-नपुंसक बना देता है ।

स्वास्थ्यरक्षाके लिए संभोग आवश्यक है, इस भ्रमको दूर कर देना हरएक डाक्टर और अनुभवी सलाहकारपर फर्ज है । मैं तो अपने अनुभव और विद्वान् अनुभवी चिकित्सकोंके साथ बातचीत करके जो-कुछ जान सका हूं, उसके आधारपर यह कहनेको तैयार हूं कि लंबे अरसेतक संभोग न करनेसे कुछ भी हानि नहीं होती, बल्कि बेहद लाभ होता है । कितने ही युवकोंमें जो उछलता हुआ उत्साह और कौंधता हुआ तेज दिखाई देता है वह उनके जी भरकर विषय-भोग करनेका फल नहीं बल्कि संयमका प्रसाद होता है । हरएक पुरुषार्थी 'पुरुष' जाने-अनजाने इस सूत्रका पालन करता है—

विषय-वासनाकी तृप्तिमें खर्च होनेवाली शक्ति सहज ही पुरुषार्थ सिद्धिमें लगाई जा सकती है । शक्तिका संयम जितना अधिक होगा उतनी ही अधिक सिद्धि मिलेगी ।

इन्सान कितनी ही सदियोंसे कीमियाकी तलाशमें भटक रहा है । इस सूत्रमें जैसी शक्तियां भरी हैं वैसी कहां मिलेंगी ?

## स्त्रीका कर्त्तव्य

स्त्रियोंको अब जागना, सावधान हो जाना चाहिए । उन्हें यह दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए कि हम पुरुषकी विषय-वासना तृप्त करनेके साधन नहीं हैं । इस रूपमें व्यवहार किये जानेका उन्हें तीव्र विरोध करना चाहिए । पुरुष कमाकर स्त्रीको खिलाता है तो इसके लिए इतना उपद्रव क्यों ? वह घर चलाये, बच्चोंको पाले-पोसे, पढ़ाये-लिखाये, घरके वायु-मंडलमें प्रसन्नता

भरे, पति और बच्चोंको ऊंचे आदर्शोंसे अनुप्राणित करे, अपने उगते-खिलते हुए बेटे-बेटियोंको सन्मार्गपर चलाती रहे, इससे अधिक स्त्रीका कर्तव्य और क्या हो सकता है? इतने कर्तव्योंका बोझ उठानेके लिए तो उसे इनाम मिलना चाहिए, उसके लिए खास सुभीते कर दिये जाने चाहिएं।

## ब्रह्मचारिणी जोन

पुरुष जैसे विषय-भोगकी कामनाको पुरुषार्थमें बदल सकता है वैसे ही स्त्री भी कर सकती है। ऊंचे आदर्शको सामने रखकर अपने यौवन-धन, अपने सौन्दर्य और अपने सारे आकर्षणको लेकर वह बड़े-से-बड़ा पुरुषार्थ कर सकती है, इतिहासमें उसका सबसे ऊंचा उदाहरण जों दार्क (जोन ऑव आर्क)का है। उसके पास अपने निष्कलंक कौमार्य और पारदर्शक ब्रह्मचर्यके सिवा और कौन-सा बल था। १५ वीं सदीमें फ्रांसमें कैसी भयावह स्थिति थी! सब ओर दारिद्र्य, दुःख और दुष्टताका साम्राज्य था। फ्रेंच सेना अनेक वर्षोंसे अंग्रेजी सेनासे हारपर हार खाती जा रही थी, सैनिक निस्सत्व, निर्वीर्य हो गये थे। उत्तरके सभी बड़े नगर दुश्मनके कब्जेमें थे। पेरिसकी सड़कोंपर लाशोंके ढेर पड़े सड़ रहे थे। राजा भाग गया था। स्त्रियोंमें शील-जैसी वस्तु रह ही नहीं गई थी, ऐसे कठिन कालमें जों दार्क नामकी अपढ़ पर महा शूरवीर और बुद्धिमती कुमारी आगे आई। लोग उसकी पवित्रता स्वीकार न करते थे। सोचते थे कि यह भी फ्रांसकी दूसरी हजारों छोकरियों-जैसी होगी। सोलह सालकी लड़कीका कौमार्य क्या अखंडित हो सकता है?

उसके कौमार्यकी जांच करनेके लिए एक कमीशन बिठाया गया। उसका दावा सही साबित हुआ। तब बुद्धिमान पुरुषोंने उसे चांदीका बख्तर पहनाया और फौजके आगे रखा, और वह इस तरह [illegible] दौड़कर लड़ी मानो उसके अन्दर किसीने बिजली भर दी हो। उसके ब्रह्मचर्यका लोगोंके ऊपर अद्भुत प्रभाव पड़ा। नामर्द मर्द बन गये और सैकड़ों वर्षोंसे चलनेवाली लड़ाई गिने-चुने दिनोंमें ही समाप्त हो गई। अंग्रेजोंके बदन

फ्रांससे उखड़ गये। इतिहासमें इस घटनाका जवाव नहीं मिला। पर आज जो प्रवाह वह रहा है वह चलता रहे—स्त्री विषय-वासनाकी तृप्ति-मात्रका साधन वन जाय। पुरुप उसे भ्रष्ट करता रहे, जनन-निरोधके साधनोंका चलन आम हो जाय, तो इससे समाजमें सत्यानाशका जो चक्र चलेगा उसे रोकनेके लिए ब्रह्मचारिणी तपस्विनी ज्‌ाँ दार्क-जैसों की ही आवश्यकता होगी, जो १५ वीं सदीकी उस वीरांगनाका जोड़ होगा।

सव स्त्रियाँ भले ही ज्‌ाँ दार्क न वनें, भले ही वे पवित्र विवाह-वंधनमें वंधें; पर इस वंधनमें वंधकर भी वे अपने सम्वन्धकी पवित्रता कायम रखें, उसे वेश्या-वृत्ति न वना दें। माताका धर्म समझें और पुरुषोंका पुरुषार्थ जगानेवाली शक्ति वनें।

## उपसंहार

यह इस सुन्दर पुस्तकका सार है। पहली पुस्तकका सार लगभग शव्दशः उलया है। पर यह खुलासा उलया नहीं वल्कि लेखकके भावोंका निचोड़ है। सारी पुस्तकमें जो-कुछ कहा गया है वह मानो अपने इस महामंत्रमें आ जाता है—

### मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दु धारणात्

और जीन द आर्क-जैसे ज्वलन्त दृष्टान्त अपने वैधव्यके अखंड ब्रह्मचर्यसे चमकनेवाली मीरावाई, झांसीकी महारानी लक्ष्मीवाई और अहल्यावाई होलकरके तया संपूर्ण जीवनको कौमार्य—ब्रह्मचर्यसे शोभा-सम्पन्न कर देनेवाली दक्षिण भारतकी दो साध्वियों अव्वै और आंडालके चरित्रोंमें मिलते हैं।[1]

---

[1] स्वर्गीय श्री महादेव देसाई द्वारा किये हुए और 'नवजीवन' में प्रकाशित सारांशका उलया।

: २ :

# जनन और पुनर्जनन

(श्री विलियम लॉफ्टस हेयरके लेखका भावानुवाद[1])

जिन जीवोंका शरीर केवल एक कोषका बना होता है उन्हें खुर्दबीनसे देखनेपर प्रकट होता है कि अतिनिम्न कोटिकी जीवश्रेणियोंमें जनन या वंश-वृद्धिकी क्रिया विभाजनके द्वारा होती है। जीव-शरीरके टुकड़े होकर एकसे दो जीव बन जाते हैं। जीव पोषण पाकर पुष्ट होता है और उसकी जातिके जीवके देहकी अधिक-से-अधिक जितनी बाढ़ हो सकती है उस बाढ़को जब वह पहुँच जाता है तब वह अपने प्राण-केन्द्र (न्यूक्लियस) और कुछ क्षण बाद शरीरके भी दो टुकड़े कर लेता है। स्थिति साधारण हो—जल और आहार सुलभ हो—तो जान पड़ता है, उसके जीवनका कार्य यहीं समाप्त हो जाता है। पर ये दोनों वस्तुएं सुलभ न हों तो कभी-कभी यह देखनेमें आता है कि दोनों कोष फिर जुड़ जाते हैं। इससे नये जीवकी उत्पत्ति तो नहीं होती; पर उस जीवकी जवानी लौट आ सकती है।

बहुकोषी जीवोंमें भी पोषण और वृद्धिकी क्रियाएं वैसे ही होती हैं जैसे नीचेकी श्रेणीवाले प्राणियोंमें, पर एक नई बात देखनेमें आती है। जिस कोष-समूहसे शरीरका निर्माण होता है वह कई वर्गोंमें बंटकर भिन्न-भिन्न कार्य करने लगता है। कुछ आहार या पोषण प्राप्त करते हैं, कुछ उसका वितरण करते हैं, कुछ शरीर या उसके विभिन्न अंगोंको हिलने-डुलनेमें समर्थ बनाते हैं तो कुछ उसकी रक्षाका भार उठाते हैं, जैसे खाल। जिन कोषोंको नये काम सौंपे जाते हैं वे विभाजनकी प्रारंभिक क्रिया त्याग देते हैं। पर जिनका स्थान पिंडके अधिक भीतरी भागमें होता है वे उसे

---

[1] शिकागो अमरीकाके 'ओपेन कोर्ट' नामक मासिकके मार्च १९२६ के अंकमें प्रकाशित।

किये जाते हैं। जिन कोपोंका रूप-कार्य वदल गया वे उनकी सेवा-रक्षा करते हैं। पर वे खुद जैसे-के-तैसे वने रहते हैं। वे पहलेकी तरह फटते, विभक्त होते रहते हैं, पर वहुकोपी शरीरके अंदर ही आगे चलकर कुछ उससे वाहर भी कर दिये जाते हैं। परन्तु उन्हें एक नई शक्ति मिल जाती है। अपने पुरखोंकी तरह फटकर एकसे दो हो जानेके वदले वे अपने प्राण-केन्द्र-के टुकड़े किये विना ही उससे नये पिंड पैदा कर लेते हैं। यह क्रिया तवतक चलती रहती है जवतक प्राणी अपनी जातिकी पूरी वाढ़ नहीं प्राप्त कर लेता। तव उसकी देहमें एक नई वात दिखाई देती है। वीज-कोपोंके मूल समुदाय वाह्य जननके काममें छुट्टी पा ही जाते हैं। देहके भीतर विभिन्न क्रियाओंके लिए वे नये कोप भी लगातार प्रस्तुत करते रहते हैं। अपने मूल रूपमें वने रहनेवाले कोप इस प्रकार एक साथ दो काम करते हैं—शरीरके विकासके लिए भीतरी जनन या उत्पादन और वंश-रक्षाके लिए वाहरी जनन। यहां इन दोनों क्रियाओंमें हम स्पष्टतः भेद कर सकते हैं। इनमेंसे एकको हम पुनर्जनन और दूसरेको जनन कहेंगे। एक वात और भी ध्यान देने योग्य है। पुनर्जननकी क्रिया—भीतरी उत्पादन—व्यक्तिकी जीवन-रक्षाके लिए अनिवार्य है, इसलिए आवश्यक और प्रधान है। जननकी क्रिया कोपोंके आवश्यकतासे अधिक हो जानेका परिणाम है, इसलिए कम जरूरी, गौण है। संभवतः दोनों शरीरको पूरा पोपण मिलनेपर अवलंवित है, क्योंकि उसमें कमी हुई तो शरीरके भीतरी निर्माणकी क्रिया ठीक तौरसे न हो सकेगी और फिर वाह्य जनन-वंश-वृद्धिकी आवश्यकता न होगी, होना शक्य न होगा। अतः इस स्थितिमें जीवनका नियम यह है कि वीज-कोपोंका पोपण पहले पुनर्जननके लिए किया जाय, फिर जनन-क्रियाके लिए। शरीरको पूरा पोपण न मिलनेकी दशामें पुनर्जनन प्रथम कर्तव्य होगा और जननकी क्रिया वंद रहेगी। इस प्रकार हम जान सकते हैं कि सन्तानोत्पादन कुछ समय तक रोक रखनेकी प्रेरणाका उद्गम कहां है और किस तरह विकसित होकर उसने ब्रह्मचर्य और तपश्चर्याका रूप प्राप्त किया। आन्तरिक पुनर्जननकी क्रिया वंद हो जानेका अर्थ मृत्यु होगा, और यह वात हमें स्वाभाविक मृत्युके मूलका भी पता दे देती है।

## जीवन-शास्त्रमें जनन

मनुष्यों और पशु-जातियोंमें लिंग-भेद चरम विकासको पहुंच चुका है और साधारण नियम बन गया है। इनकी स्थितिपर विचार करनेके पहले हमें जनन या वंश-वृद्धिके मध्यवर्ती प्रकारपर एक निगाह डाल लेनी होगी। यह प्रकार है—उभयलिंग प्रकारके पहले और अलिंग प्रकारके बादका। पौराणिक गाथाओंमें इन जीवश्रेणीको उभयलिंगकी संज्ञा दी गई है, इसलिए कि वह नर-नारी दोनोंके काम करता है। कुछ जीवोंमें अब भी यह बात देखनेमें आती है। उनमें बीज-कोषोंकी आन्तरिक वृद्धि तो ऊपर बताई हुई रीतिसे ही होती है; पर जनन-क्रियाके लिए बिलकुल अलग कर दिये जानेके बदले वे कुछ कालके लिए ही अलग किये जाते हैं और देहके दूसरे भागमें दाखिल हो जाते हैं, और जबतक स्वतंत्र जीवनकी योग्यता नहीं प्राप्त कर लेते तबतक वहीं उनका पोषण होता रहता है।

जीवनके विकासका नियम यह मालूम होता है कि प्राणी एक-कोषी हो, बहुकोषी हो या उभयलिंग, उसके शरीरकी बाढ़ उस हदतक हो सकती है जिस हदतक उसके जननी-जनक उसके जन्म-कालमें पहुंच चुके थे। इस प्रकार प्रगति व्यष्टि-प्राणीकी ही होती है। जब-जब वह बच्चा पैदा करता है, शरीर-संघटनकी दृष्टिसे वह खुद पहलेसे अच्छी स्थितिमें होता है या हो सकता है। फलतः उसकी सन्तान अपने मां-बापकी साधारण बाढ़को पहुंचनेमें समर्थ होगी। सन्तानोत्पादनमें समर्थ होनेका काल प्रत्येक व्यक्ति और जातिके लिए भिन्न-भिन्न होता है। पर आदर्श रूपमें वह जवानीसे बुढ़ापेके आरंभतक होता है। जवान होनेके पहले या शक्तियोंका ह्रास आरम्भ हो जानेके बाद सन्तान उत्पन्न की जाय तो वह मां-बापसे बल-बुद्धिमें हीन होगी। यहां भी शरीर-शास्त्रके नियम हमें संयोग-नीतिका एक नियम बताते हैं—वंश-वृद्धि और शरीरकी आंतरिक पुष्टिकी दृष्टिसे पूर्ण यौवन-काल ही सन्तानोत्पादनके लिए सर्वोत्तम काल है।

उभयलिंग प्राणीसे लिंग-भेदका उत्तरोत्तर इतिहास हम छोड़ देते हैं, क्योंकि वह विकास-क्रम निर्विवाद तथ्य है। पर उभयलिंग प्राणीकी

उत्पत्तिके साथ एक नई वात पैदा हो जाती है जिसकी चर्चा आवश्यक है। उभयलिंग प्राणीके दोनों अर्द्धभाग—'नर' और 'मादा'—दो पिंड तो हो ही जाते हैं, हर एक अलगसे वीज-कोष भी पैदा करने लगता है। नर-भाग बीज-कोष या शुक्र-कीट वनाकर आंतरिक जननका पुराना वुनियादी काम वदस्तूर किये जाता है, पर उन्हें पृथक् करनेके वजाय इस उद्देश्यसे वटोर रखता है कि शुक्र-कीट उनमें प्रविष्ट होकर गर्भाधान करे। दोनों अवस्थाओंमें पुनर्जननकी क्रिया व्यक्तिके लिए अनिवार्य आवश्यक है। गर्भ-स्थितिके वादसे भीतरी पुनर्जननकी क्रिया प्रतिक्षण वढ़ती जाती है। मानव-प्राणीके पूरी वाढ़को पहुंच जानेपर सन्तानोत्पादन हो सकता है, पर वह केवल जातिके हितार्थ होता है, व्यक्तिका हित उससे होना जरूरी नहीं है। निम्नकोटिके जीवोंकी तरह यहां भी आंतरिक जनन रुक जानेका अर्थ रोग या मृत्यु होता है। यहां भी व्यक्ति और जातिके हित एक-दूसरेके विरोधी होते हैं। व्यक्तिके पास वीज-कोषोंकी फाजिल पूंजी न हो तो सन्तानोत्पादनमें उसे खर्च करनेसे पुनर्जनन या आंतर उत्पादनकी क्रियाको कुछ आवश्यक सामग्रीकी कमी पड़ जायगी। सच तो यह है कि सभ्य मानव-समाजमें संभोग वंश-रक्षाकी आवश्यकतासे कहीं अधिक और भीतरी पुनर्जननकी क्रियामें अड़चन डालते हुए किया जाता है, जिसका फल रोग, मृत्यु और दूसरे कष्ट होते हैं।

मानव-शरीरकी कल किस तरह चलती है इसपर यहां हम थोड़ी अधिक सूक्ष्म दृष्टि डालना चाहते हैं। हम पुरुष-शरीरको लेते हैं, पर स्त्री-शरीरमें भी, व्यौरेके थोड़े अन्तरके साथ, वही क्रियाएं होती हैं।

शुक्र-कोषोंका केन्द्रीय भंडार प्राणका आदिम और मूलभूत अधिष्ठान है। भ्रूण या गर्भ आरंभसे ही, माताकी देहमें वननेवाले रसोंसे पुष्ट होकर, प्रतिक्षण वढ़ता रहता है। शुक्र-कोषोंका पोषण ही यहां भी जीवनका नियम दिखाई देता है। गर्भके शुक्र-कोषोंकी संख्या ज्यों-ज्यों वढ़ती है और उनमें कुछ भिन्नता पैदा होने लगती है, वे आवश्यकतानुसार नये रूप और नये कार्य ग्रहण करने लगते हैं। स्थूल अर्थमें जन्म-ग्रहण-मांके पेटसे वाहर आनेसे इस क्रियामें थोड़ा ही अन्तर पड़ता है, पहले शुक्र-कोषके पोषणकी सामग्री नालके द्वारा मिलती थी, अव होठों और मुंहके रास्ते मिलती है। कोषोंकी

वृद्धि अब तेजीसे होती है और सारे शरीरमें जहां कहीं निकम्मे तन्तुओंकी जगह नये तन्तु बनानेकी आवश्यकता होती है वहां पहुंच जाते हैं। रक्त-वाहिनी नाड़ियां इन कोषोंको अपने आदि अधिष्ठानसे लेकर देहके हर हिस्सेमें पहुंचाती हैं। बड़े-बड़े समूहोंमें वे खास-खास काम अपने जिम्मे लेते हैं और देहके भिन्न-भिन्न अंगोंका निर्माण और मरम्मत करते हैं। जिस कोष-समुदायकी वे व्यष्टि हैं वह जीता रहे इसके लिए वे हजार बार मौतको गले लगाते हैं। ये सारे 'मुर्दे' शरीरकी ऊपरी सतहपर आ जाते हैं, और खासकर हड्डियों, दांतों, खाल और बालोंमें कड़ाई पैदा करके सारे शरीरका बल बढ़ाते और उसकी रक्षा करते हैं। उनकी मृत्यु देहके उच्चतर जीवन और उसपर आश्रित सारी बातोंका मूल्य है। वे आहार-ग्रहण, नये कोषोंका उत्पादन, विभाजन, भिन्न-भिन्न वर्गोंमें बंटकर भिन्न-भिन्न कार्योंका संपादन, और यह सब करके अन्तमें मर जाना बंद कर दें तो शरीर जी नहीं सकता।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, बीज-कोषों या शुक्र-कोषोंसे दो तरहके जीवनकी प्राप्ति होती है—१. आन्तरिक या प्रजनन-रूप और २. बाह्य या जननरूप। पुनर्जनन देहके जीवनका आधार है और उसको भी उसी स्रोतसे जीवन मिलता है जिससे जनन-क्रियाको। इससे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि विशेष अवस्थाओंमें दोनों क्रियाएं एक-दूसरेकी विरोधिनी, एक-दूसरेमें बाधक हो सकती हैं।

## पुनर्जनन और अचेतन मन

पुनर्जनन यांत्रिक क्रिया—केवल कलके पुर्जोंका हिलना—न है और न हो सकता है। वह तो जीव-सृष्टिमें कोषके प्रथम विभाजनकी तरह प्राण या जीवका अस्तित्व बतानेवाला व्यापार है। अर्थात्, वह कणोंमें बुद्धि और संकल्पकी शक्ति होनेकी सूचना देता है। आत्म-संरक्षण, विभाजन और विकास—उनका विशिष्ट कार्योंकी योग्यता प्राप्त करना शुद्ध यांत्रिक क्रिया है, यह बात तो कोई भी नहीं कह सकता। इसमें सन्देह नहीं कि जीवनकी ये मूलभूत क्रियाएं हमारी वर्तमान चेतनासे इतनी दूर जा पड़ी हैं

कि कोई बुद्धिकृत या सहज संकल्प उनका नियमन करता है, यह नहीं जान पड़ता। पर क्षण-भरके विचारसे ही यह बात स्पष्ट हो जायगी कि पूरी वाढ़को पहुंचे हुए मनुष्यका संकल्प जिस तरह उसकी वाह्य चेष्टाओं और क्रियाओंका संचालन, बुद्धिके निर्देशानुसार करता है, वैसे ही यह भी मानना होगा कि आरंभमें होनेवाली शरीरके क्रमिक संघटनकी क्रियाएं भी, अपनी परिस्थितिकी सीमाओंके अंदर, एक प्रकारकी बुद्धिकी रहनुमाईमें काम करनेवाली एक प्रकारकी इच्छा-शक्ति या संकल्पके द्वारा परिचालित होती है। इस बुद्धिको मानस-शास्त्रके पंडित अब अचेतन मन या अन्तश्चेतना कहने लगे हैं। यह हमारी व्यष्टि सत्ता, हमारी आत्माका ही एक अंग है, जो हमारे साधारण चिन्तनसे लगाव न रखते हुए अपने निजके कर्तव्योंके विषयमें अतिशय जागरूक और सावधान रहता है। हमारी बाह्य चेतना सुषुप्ति, बेहोशी आदिमें सो जाती है; पर अन्तश्चेतना कभी एक क्षणके लिए आंख नहीं मूंदती।

इस प्रकार हमारी अन्तश्चेतना ही वह प्राण-शक्ति है जो शरीरके भीतरी निर्माण और विकासकी पेचीदा क्रियाओंका नियमन करती है। उसका पहला काम है—गर्भयुक्त डिम्बको अलग करना और इसके बाद प्राणीकी मृत्यु होनेतक मूल बीज-कोषोंको जज्ब कर और उन्हें भिन्न-भिन्न अंगोंको भेजकर, अपने पिंड या शरीरकी रक्षा करते रहना। इस विषयमें मेरा मत अनेक नामी मानस-शास्त्रियोंके मतका विरोध करता हुआ मालूम हो सकता है, पर मेरा कहना है कि अचेतन मनको केवल व्यक्तिकी चिन्ता होती है, जातिके जीने-मरनेकी परवाह उसे नहीं होती। अतः पहले वह पुनर्जननकी गाड़ी चलानेका उपाय करता है। केवल एक ही दृष्टिसे कह सकते हैं कि अचेतनको भावी पीढ़ीकी, जातिकी, चिन्ता होती है—शरीर-संघटनकी दृष्टिसे व्यक्तिको अपने पुरुषार्थसे वह जिस स्तरपर पहुंचा चुका है उसको वह बनाये रखना चाहता है। पर जो बात असंभव है वह उसके किये नहीं हो सकती। चेतन या ज्ञात संकल्पकी सहायतासे भी वह जीवनको अनन्त कालतक बनाये नहीं रह सकता। अतः काम-प्रवृत्ति या संभोगके आवेगके जरिये अपने-आपको फिरसे पैदा करता है। कह सकते हैं कि इस

व्यापारमें अचेतन और चेतन मन—अन्तश्चेतना और बहिश्चेतना—मिल-
कर काम करती हैं। संभोगमें मिलनेवाला सुख साधारणतः इस बातकी
सूचना माना जा सकता है कि उससे व्यक्तिको सुख मिलनेके सिवा किसी
औरके प्रयोजनकी भी पूर्ति होती है। व्यक्तिको इस सुखकी कीमत भी,
जितनी वह जानता है, उससे बहुत ज्यादा चुकानी पड़ती है।

## जन्म और मृत्यु

इस लेखको विज्ञानके विशेषज्ञोंके अवतरणोंसे भरकर बोझिल बना
देना इष्ट नहीं है पर विषय इतने महत्त्वका है और जन-समाजमें इस विषय-
में इतना अज्ञान फैल रहा है कि कुछ प्रामाणिक वचन हमें देने ही होंगे। रे
लैंकेस्टर लिखते हैं:—

"आदि जीव (प्रोटोजोआॅन) का शरीर केवल एक कोषका होता है,
और अपना वंश वह अपने शरीरके टुकड़े करके बढ़ाता है। इनके इस प्रकारके
जीवोंमें मृत्यु कोई स्वाभाविक और साधारण घटना नहीं है।"

वीसमानका कहना है—"स्वाभाविक मृत्यु केवल बहुकोषी जीवोंमें
ही होती है, एक कोषवाले जीव उससे बच जाते हैं। उनके विभाजनका कभी
वैसा अन्त नहीं होता जिसकी तुलना मृत्युसे की जा सके, और यह भी जरूरी
नहीं कि नये प्राणीके पैदा होनेके लिए पुरानेको मरना पड़े। विभाजनमें
दोनों अंश समान होते हैं, न कोई बूढ़ा होता है न कोई जवान। इस प्रकार
व्यष्टि जीवोंकी अनन्त श्रेणी चलती रहती है, जिसमें हर एककी वय उतनी
ही होती है जितनी जातिकी। हर एकमें अनन्त कालतक जीते रहनेकी
सामर्थ्य होती है, उनके टुकड़े सदा होते रहते हैं, पर मरना कभी नहीं।"

पैट्रिक गेडेस 'द इवोल्यूशन आव सेक्स' (लिंग-भेदका विकास)
पुस्तकमें लिखते हैं—"इस तरह हम कह सकते हैं कि मृत्यु देह-धारणका
मूल्य है। यह कीमत हमें कभी-न-कभी चुकानी ही पड़ती है। ऐसे हमारा
मतलब कोषोंके उन जटिल संघातसे है जिनमें थोड़ा-बहुत अंग-भेद और कार्य-
भेद विद्यमान हो।"

श्री वीसमानके अपेक्षाकृत शब्दोंमें "देह एक तरहसे जीवनके सच्चे

अधिष्ठान-उत्पादन-कार्य करनेवाले कोष-समूहका अतिरिक्त विस्तार उनसे जोड़ी हुई चीज-सी जान पड़ती है।"

श्री रे लैंकेस्टर भी यही वात कहते हैं—"वहुकोषी प्राणियोंके शरीरमें कुछ कोष देहके और घटकोंसे अलग कर दिये जाते हैं।...ऊंची श्रेणीके जीवोंकी देह, जो मरणशील होती है, इस दृष्टिसे क्षणिक और गौण वस्तु मानी जा सकती है, जिसकी रचनाका प्रयोजन अधिक महत्त्ववाली और अमर वस्तु-विभाजनसे उत्पन्न कोष-संघात—का कुछ दिनोंतक धारण-पोषण करते रहना-भर है।"

"पर इस विषयमें सवसे अधिक मार्केकी और संभवतः सर्वाधिक विस्मय-जनक वात वह गहरा लगाव है जो ऊंचे प्रकारकी वनावट वाली देहों या पिंडोंमें जनन-क्रिया और मृत्युके वीच पाया जाता है। अनेक विज्ञानविद् इस विषयपर स्पष्ट और निश्चयात्मक शव्दोंमें अपने विचार प्रकट कर चुके हैं। जननका दण्ड मरण है। वहुतेरी जीव-योनियोंमें यह वात विलकुल स्पष्ट है। वंश-रक्षाका उपाय करनेमें उनमें नर या मादामेंसे एकको अक्सर जानसे हाथ धोना पड़ता है। सन्तानोत्पादनके वाद जीते रहना प्राणकी विजय है, जो सदा नहीं होती। कुछ जीव-जातियोंमें तो कभी नहीं होती। गेटेने मृत्युपर लिखे हुए अपने निवंधमें भली-भांति दिखाया है कि जनन और मरणमें कितना निकटका और अनिवार्य सम्वन्ध है। ये दोनों क्रियाएं क्षय क्रियाकी वे मंजिलें कही जा सकती हैं जव स्थिति कोई पक्की करवट लेती है।"

श्री पैट्रिक गेडेस पुनः कहते हैं—"सन्तानोत्पादन और मृत्युका सम्वन्ध निस्संदेह स्पष्ट है। पर आम वोल-चालमें इस लगावको गलत रूप दे दिया जाता है। हम लोगोंको यह कहते सुनते हैं कि प्राणीकी मृत्यु अटल है इसलिए उसे वच्चे पैदा करने ही होंगे, नहीं तो जातिका नाश हो जायगा। पर पीछेके उपयोगकी यह दलील आमतौरसे हमारे दिमागकी वादमें होनेवाली उपज होती है। इतिहास हमें वताता है कि प्राणी इसलिए वच्चे नहीं पैदा करता कि उसे एक दिन मरना है, वल्कि वह वच्चे पैदा करता है इसीलिए मरता है।"

गेटेने इस तत्त्वको यों सूत्र-रूपमें बताया है—"मरण जननको आवश्यक नहीं बनाता, बल्कि वह खुद जननका अनिवार्य परिणाम है।"

बहुत-सी मिसालें देनेके बाद गेडेसने इन ध्यान देने योग्य शब्दोंमें इस विषयका उपसंहार किया है—"ऊंची श्रेणीके जीवोंमें वंश-वृद्धिके लिए होनेवाला बलिदान बहुत कम हो गया है, फिर भी काम-वासनाकी तृप्तिके फल-रूपमें मौत होनेका खतरा मनुष्यके लिए रहता ही है। संयत मात्रामें संभोगसे भी तन-मनमें सुस्ती, थकावट आ जाती है और शारीरिक शक्तिके इस ह्रास-कालमें हर तरहके रोग होनेकी संभावना बढ़ जाती है, यह तो सभीको मालूम है।"

इस विवेचनाका निचोड़ यह हो सकता है कि संभोग पुरुषके लिए शरीरके क्षयकी क्रिया या मौतकी ओर बढ़ना है और प्रसव-क्रियामें स्त्रीके लिए भी उसका वही अर्थ होता है। और यह बात बिलकुल पक्की है।

असंयत संभोगका शरीरके स्वास्थ्यपर जो अनिष्टकर प्रभाव पड़ता है उसपर एक पूरा अध्याय लिखा जा सकता है। अखंड ब्रह्मचर्य या पूर्ण संयमका पालन करनेवालेको भी बल-वीर्य, दीर्घायु और आरोग्यकी प्राप्ति होना साधारण नियम है। इसका एक सबूत, यद्यपि वह जरा भद्दा है, यह हो सकता है कि दुर्बल जनोंके शरीरमें इंजेक्शनके जरिये बाहरसे थोड़ा वीर्य पहुंचा देनेसे उनकी बहुत-सी व्याधियां दूर हो जाती हैं।"

प्रस्तुत निबंधके इस भागमें जो मत या निष्कर्ष पाठकोंके सामने रखे गये हैं उनका मन उन्हें माननेसे इनकार कर सकता है। कितने ही लोग बहुतेरे बूढ़े और देखनेमें तन्दुरुस्त लगनेवाले स्त्री-पुरुषोंके नाम लेंगे जिनके बहुतसे बालबच्चे हैं, आंकड़े देकर दिखायंगे कि विवाहित स्त्री-पुरुष अविवाहितोंसे अधिक जीते हैं। पर इनमेंसे कोई भी दलील इस तथ्यके सामने टिक नहीं सकती कि विज्ञानकी दृष्टिसे मृत्यु जीवनके अन्तमें घटित होनेवाली घटना नहीं है, बल्कि एक क्रिया है जो जीवनके साथ ही आरंभ होती और प्रतिक्षण उसके साथ-साथ चलती रहती है। शरीरकी छीजकी पूर्ति अथवा पोषण और उसका क्षय जीवन और मरणकी शक्तियां हैं जो एक-दूसरेके कदम-ब-कदम चला करती हैं। बचपन और चढ़ती जवानीके दिनोंमें

जीवनकी क्रिया दौड़में आगे रहती है। प्रौढ़ावस्थामें दोनों कदम-ब-कदम चलती हैं; पर जब उम्र ढलने लगती है तो मृत्युकी क्रिया आगे निकल जाती है और अन्तमें निधनके क्षणमें जीवनकी शक्तिको पक्के तौरसे पछाड़ देती है। इस जय-लाभमें सहायक होनेवाली हर बात, हर बात जो उस घड़ीको एक दिन, एक बरस या एक दशक आगे खींच लाती है, मृत्युकी क्रिया है। और संभोग निस्सन्देह ऐसा ही कार्य है, खासकर जब वह अति मात्रामें किया जाय।

अपने उपर्युक्त कथनकी प्रामाणिकतापर सन्देह करनेवालोंको मैं एक बहुत ही रोचक और ज्ञानगर्भ पुस्तक पढ़नेकी सलाह दूंगा। वह चार्ल्स एस माइनट लिखित 'द प्राब्लम आव एज ग्रोथ ऐंड डेथ' (वय विकास और मृत्युकी समस्या)।[1] विद्वान लेखकने इस पुस्तकमें क्षय और मृत्युका अर्थ और स्वरूप शरीर-शास्त्रकी दृष्टिसे बताया है। उसकी इस बातको मैं पक्के तौरसे मानता हूं कि स्वाभाविक मृत्यु जीवनकी कोई अलग, असंबद्ध घटना नहीं है, बल्कि एक निरन्तर चलती रहनेवाली क्रिया है। पर कामुकताके विषयपर जो पुस्तक मुझे सबसे अधिक महत्त्वकी जान पड़ी वह है डाक्टर केनेथ सिलवां गुथरीकी 'रिजेनरेशन द गेट ऑव हेवेन' (पुनर्जनन-स्वर्ग-द्वार[2])। उसका नाम तो बताता है कि वह आध्यात्मिक दृष्टिसे लिखी गई है, पर उसमें शरीरशास्त्र और नीति-शास्त्रकी दृष्टिसे भी विषयका पूर्ण विवेचन किया गया है और अपने मतकी पुष्टिमें विज्ञानके प्रमुख पण्डितों तथा ईसाई धर्माचार्योंके मत पेश किये गए हैं।

## मनकी इन्द्रिय

शरीरके उच्चतर कार्यों, खासकर मनकी भौतिक इंद्रिय-नाड़ी-संस्थान

---

[1] The Problem of Age, Growth and Death, by Charls S. Minot (1908. Johan Murray)

[2] Regeneration, the Gate of Heaven, by Dr. Kenneth Sylvan Guthrie (Boston, the Barta, Press)

और मस्तिष्कका विचार करनेसे जनन और पुनर्जनन क्रियाके स्थिर विशेषका कुछ अंदाजा हमें लग सकता है। हमारा सम्पूर्ण नाड़ी-संस्थान भी ऐसे कोषोंसे ही बना है जो कभी बीज-कोष रह चुके हैं और जो प्राणके आदि अधिष्ठानसे खिचकर आये हैं। विभिन्न संस्थानोंके नाड़ी-जाल केन्द्रोंको उनकी धारा सदा सींचती रहती है, दिमागको तो प्रचुर मात्रामें उसकी प्राप्ति होती है। इन कोषोंका ऊपरकी ओर जाकर शरीरके पोषणमें लगना रोककर वे सन्तानोत्पादन या केवल भोग-सुखके लिए खर्च किये जायं तो वह खजाना खाली हो जाता है जिससे उक्त अंग रोज होनेवाली छीजकी पूर्ति किया करते हैं? यही शारीरिक सचाइयां हमारी वैयक्तिक संभोग-नीतिका आधार है, जो अखंड ब्रह्मचर्य नहीं तो संयमकी सलाह जरूर देती हैं—संयमकी प्रेरणाका मूल स्रोत कहां है यह तो बताती ही है।

कुछ दर्शन मानते हैं कि ब्रह्मचर्य-धारणसे मन और आत्माकी शक्तियां बढ़ती हैं। भारतका योग-दर्शन उनमें प्रधान है। पाठक पातंजल योग-दर्शनके किसी भी प्रामाणिक उल्थाको देखकर मेरे कथनकी सचाईकी जांच कर सकते हैं। ('हारवर्ड ओरियंटल सिरीज'में प्रकाशित जेम्स एच० वुड कृत उल्था मेरी समझसे अंग्रेजीमें उसका सर्वश्रेष्ठ अनुवाद है।)

भारतके धार्मिक और सामाजिक जीवनसे परिचित जनोंको मालूम होगा कि हिन्दू लोग पहले तपस्या किया करते थे और बहुतेरे अब भी करते हैं। उसके दो उद्देश्य होते हैं—शरीरकी शक्तियोंको बनाये रखना और बढ़ाना और मनकी अतीन्द्रिय शक्तियां या सिद्धियां प्राप्त करना। पहलेको हठयोग कहते हैं। शारीरिक पूर्णता—आदर्श स्वास्थ्यको ही उसने अपना लक्ष्य मान लिया है। उसके अन्दर बहुतसे करामाती काम किये जाते हैं। दूसरेका नाम राजयोग है, जिसका उद्देश्य मन, बुद्धि और आत्माकी शक्तियों-का विकास है। पर शारीरिक सदाचारका अंग दोनोंमें समान है। यह पतंजलिके योगसूत्र और प्राचीन भारतके इस महान मानस-शास्त्रीके सिद्धान्तोंके सहारे रचित अन्य कितने ही ग्रन्थोंमें वर्णित है।

पंच क्लेशोंमें 'राग'का स्थान तीसरा है। पतंजलिके कथनानुसार उसका अर्थ है सुख या सुख-प्राप्तिके साधनोंकी कामना या तृष्णा। सुखमें

दुःख मिला हुआ है। सुखानुशायी रागः (२-७) इसलिए वह योगीके लिए त्याज्य है।

योगके आठ अंग हैं। उनमें पहला और दूसरा यम-नियम हैं, जिनका पालन योगके अभ्यासीको सबसे पहले करना होता है। यह देखकर अचरज होता है कि योगके रहस्योंके अनेक उद्घाटनकर्ता या तो इस बातसे अनभिज्ञ हैं या जानते हुए भी इस विषयमें चुप्पी साध लेते हैं कि चौथा यम आठ प्रकारके मैथुनका त्याग है, और ब्रह्मचर्य जननेन्द्रियका निग्रह है।

पर पतंजलिके कथनानुसार ब्रह्मचर्यके लाभ महान हैं : **ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः** (३८-२)—ब्रह्मचर्यमें प्रतिष्ठित होनेवालेको वीर्य-लाभ होता है। वीर्यके मानी हैं बल, पौरुष। उसके लाभसे अणिमादि अष्ट सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है।...

श्री मणिलाल ना० द्विवेदी अपनी योग-सूत्रकी टीकामें लिखते हैं। "शरीर-शास्त्रका यह सर्वविदित नियम है कि वीर्यका बुद्धिके साथ बहुत गहरा लगाव है, और हम कह सकते हैं कि आध्यात्म-भावके साथ भी है। जीवनके इस अमूल्य तत्त्वका अपव्यय रोकनेसे मनुष्य को मन-इन्द्रियोंकी अभीष्ट अतीन्द्रिय शक्ति प्राप्त होती है। इस यमका पालन किये बिना किसीकी योग-सिद्धि होनेकी बात हमें नहीं मालूम।"

योग-सूत्रोंके कितने ही भाष्योंमें योगका प्रयोजन और प्रक्रिया रहस्य-वादकी शब्दावलीमें वर्णित है। शक्तिके विषयमें कहा जाता है कि वह सर्पके समान सबसे नीचेके चक्रसे सबसे ऊपरके चक्र अंड-कोषसे ब्रह्माण्डको जाती है।

## वैयक्तिक काम-नीति

सदाचारके नियम सामान्यतः जीवनके अनुभवोंसे बनते हैं, चाहे वे व्यक्तियोंके जीवनके हों या समाजोंके अथवा जातिके। इतिहासके कथना-नुसार उनकी रचना प्रायः कोई महापुरुष करता है। कभी-कभी उसे ईश्वरके अवतार या दूतका पद प्राप्त होता है। मूसा, बुद्ध, कनफ्यूशियस, सुकरात, अरस्तू, ईसा और उनके बाद हर देशमें हुए महान् धर्मोपदेष्टा और तत्त्व-

ज्ञानी सबने अपने-अपने देश और कालमें मनुष्यके आचारको परखनेकी कोई-न-कोई कसौटी पेश की । अतः सामान्य, सर्वोपयोगी नीति-शास्त्र दर्शन-शास्त्र, मानस-शास्त्र, शरीर-शास्त्र और समाज-शास्त्रके सिद्धान्तोंपर आश्रित होगा । ये सब मिलकर अनेक तथ्य या माने हुए तथ्य प्रस्तुत करते हैं जो स्वतःप्रमाण होते हैं । अतः किसी भी युग या सभ्यतामें वैयक्तिक काम-नीति या संभोग-नीतिके नियम उन्हीं तथ्योंके आधार बनेंगे जो लोगोंके अपने अनुभवमें उनपर सबसे ज्यादा असर डालते हैं । सामाजिक काम-नीतिकी तरह वैयक्तिक काम-नीति भी युग-युगमें भिन्न होती है । पर उसकी बातें स्थायी और अत्यधिक सार्वकालिक होती हैं ।

इस युगके लिए वैयक्तिक काम-नीति निर्धारित करनेमें हमें सभी ज्ञात तथ्यों और सम्भावनाओंका विचार करना होगा, खासकर जब विश्वसनीय परीक्षकोंके अनुभव उनकी पुष्टि कर देते हों । यह कहना अपनी बड़ाई करना नहीं है कि प्रस्तुत लेखके पहले और पांचवें प्रकरणोंमें जो तथ्य दिये गए हैं वे निर्विकार चित्तके समझदार पाठकको तत्काल कुछ युक्ति-संगत अनिवार्य परिणामोंपर पहुंचाते हैं । व्यक्तिके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक हितकी दृष्टिसे ये तथ्य यही बताते हैं कि ब्रह्मचर्य जीवनका अकाट्य नियम है । पर इस नियमको चुनौती देनेके लिए तुरंत ही दूसरा नियम हमारे सामने आकर ताल ठोकता है । एक नियम दूसरेका खंडन करता है, पहला नियम प्राकृतिक है, कामकी वासना या वेग उसकी देन है । पिछला नियम है अन्तर्ज्ञान (इंट्यूशन)का, विशालता, अनुभवका, विश्वासका, आदर्शका । पुराने नियमके अनुसरणका फल है जल्दी बूढ़ा होना और जल्दी परलोक सिधारना । नये नियमके मार्गमें ऐसी विकट बाधाएं नहीं हैं कि उनपर चलनेकी हिम्मत विरले ही करते हैं । वस्तु-स्थिति पर विश्वास करना लोगोंके लिए कठिन होता है, वे तुरंत किन्तु-परन्तु करने लगते हैं । पर यहां यह बात उल्लेखनीय है कि योगियों, संन्यासियों और भिक्षुओंके लिए जो आचारके कड़े-से-कड़े नियम रचे गए हैं वे पौराणिक आख्यानों या अंध-विश्वासोंपर आश्रित नहीं हैं, बल्कि इस निबंधमें वर्णित शारीरिक सचाइयों द्वारा आदिष्ट हैं ।

काम-वासनाकी तृप्तिमें सदाचार-पालनका पक्ष, जहांतक मेरी जानकारी है, किसी आधुनिक लेखकने काउंट टॉल्स्टॉयसे ज्यादा जोरदार या स्पष्ट शब्दोंमें उपस्थित नहीं किया है। रूसके इस आदर्श-वादी तत्त्वज्ञानीके विचारों[1]की एक बानगी मैं यहां देता हूं—

"१०२. वंश-रक्षाकी प्रवृत्ति—काम-वासना—मनुष्यमें स्वभावजन्य है। पशु-दशामें वह इस सहज वासनाकी तृप्ति कर अपने जीवनके प्रकृति-निर्दिष्ट उद्देश्यकी पूर्ति करता है। इसीमें उसका हित है।

१०३. पर चेतनाके जगनेपर उसका मन यह कहने लगता है कि इस वासनाकी तृप्तिसे व्यष्टिरूपमें उसकी कुछ अधिक भलाई होगी और वह उसकी तृप्ति जातिकी रक्षाके उद्देश्यसे नहीं बल्कि अपने निजके भलेके लिए करने लगता है। यही कामगत पाप है।

१०७. पहली हालतमें जब मनुष्य पवित्रता अर्थात् ब्रह्मचर्यका जीवन बिताना और अपनी सारी शक्ति भगवान्की आराधनामें लगाना चाहता हो, संभोग-मात्र—उसका उद्देश्य बच्चे पैदा करना और उन्हें पालना-पोसना हो तो भी—कामगत पाप होगा। जिस आदमीने ब्रह्मचर्यका रास्ता अपने लिए चुना हो शुद्धतम वैवाहिक जीवन भी उसके लिए एक स्वभाव-कृत पाप होगा।

११३. जिसने सेवा और पवित्रता या ब्रह्मचर्यका रास्ता अपने लिए चुना हो उसके लिए विवाह इस कारण पाप या गलती है कि वह इस बंधनमें न बंधता तो संभव है सबसे ऊंचा धंधा अपने लिए चुनता और अपनी सारी शक्तियां भगवान्की सेवामें—फलतः प्रेमके प्रचार और व्यक्तिके परम श्रेयकी प्राप्तिमें—लगाता। इसके बदले वह जीवनके नीचेके स्तरपर उतर आता है और अपने परम श्रेयसे वंचित रहता है।

११४. जो आदमी वंश-रक्षाके रास्तेपर चलना चाहता हो उसके लिए

---

[1]टाल्स्टायकी परिभाषामें पाप धर्म-शास्त्रके किसी विधि-निषेधका उल्लंघन नहीं है। जो-कुछ प्रेम अर्थात् सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति मैत्रीकी अभिव्यक्तिमें बाधक है, वही पाप है।

विवाह न करना पाप होगा। इसलिए कि बाल-बच्चों, अन्ततः कुटुम्बके नेह-नातेसे वंचित रहकर वह अपने-आपको दाम्पत्य-जीवनके सबसे बड़े प्रेमसे वंचित रखता है।

११५. इसके सिवा जो लोग संभोग-सुखको बढ़ानेका यत्न करते हैं उनका स्वाभाविक सुख, ज्यों-ज्यों उन्हें कामुकताकी लत लगती है, घटता जाता है। सभी शारीरिक वासनाओंकी तृप्तिमें ऐसा होता है।"

इन पंक्तियोंसे प्रकट होता है कि टाल्स्टॉयका सिद्धान्त नैतिक सापेक्ष-वाद है। मनुष्यके लिए परमेश्वर, पैगम्बर या किसी अवतारी धर्माचार्यने नियत नहीं कर दिया है, हर एकको खुद उसे चुनना पड़ता है। हां, यह जरूरी है कि वह जो नियम, जो रास्ता, अपने लिए चुने उसका अनुसरण करे।

यह आचार-नीति ऊपरसे नीचेकी ओर आनेवाला एक निषेध परम्परा-का विधान करती है। जिस आदमीको नैष्ठिक ब्रह्मचर्यमें पक्की निष्ठा है और जो ऊंचे शारीरिक-मानस लक्ष्योंके लिए बुद्धिपूर्वक संयमका पालन करता है उसके लिए सब प्रकारका संभोग वर्जित है। जो आदमी विवाह-बंधनमें बंध चुका है उसके लिए पर-स्त्री या पर-पुरुषका संग निषिद्ध है। अविवा-हित स्त्री-पुरुषके अनियमित या स्वच्छंद संभोगमें भी वेश्या-गमन या वेश्या-वृत्ति जैसे पतनकारी संबंधका निषेध होगा, और प्राकृतिक रीतिसे भोग करनेवालोंको अप्राकृतिक बुराइयोंसे बचना चाहिए। अपनी काम-वासनाकी तृप्ति करनेवालोंके लिए भी अति संभोग हर हालमें दोष माना जायगा और कच्ची उम्रके युवक-युवतियोंको प्रौढ़ वयको पहुंचने तक संभोग-सुखकी चाह दबा रखनी होगी। यही काम-नीति है।

ऐसा आदमी तो शायद ही मिले जो इस सामान्य काम-नीतिको समझ न सकता हो और ऐसे भी विरले ही होंगे जो सिद्धान्त और व्यवहार दोनोंमें तो उसकी भलाई को अस्वीकार करें। हां, युवकोंमें इसका विरोध करनेकी प्रवृत्ति अवश्य पाई जाती है, लोग यह मानते हैं कि चूंकि ब्रह्मचर्यका पालन कठिन है और विरले ही उसे निभा सकते हैं इसलिए उसका उपदेश देना बेकार है। तर्ककी दृष्टिसे तो विवाहित स्त्री-पुरुषके पर-पुरुष या पर-स्त्री शरीर-संग न करने, पति-पत्नीमें भी विषय-भोगकी अति न होने या

प्राकृतिक रीतिसे ही काम-वासनाकी तृप्ति करनेके विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। वे एक आदर्शको अस्वीकार करते हैं तो आदर्श-मात्रको कर सकते हैं और हमें गन्दी आदतों और कामुकताके गढ़ेमें गिरनेकी सलाह दे सकते हैं। बुद्धि-विवेक हमें एक ही राह बताता है—आदर्शरूपी ध्रुवतारे-का अनुसरण। यह ध्रुवतारा हमें रास्तेके गढ़ोंसे बचाता और इस योग्य बनाता है कि हम एक नियमका सहारा ले उसके बलसे विरोधी नियमपर विजय प्राप्त कर लें। इस प्रकार इस नीति-नियमका सोच-समझकर और इच्छापूर्वक अनुसरण करके मनुष्य जवानीकी अप्राकृतिक बुराइयोंसे स्वाभाविक संयोगकी स्थितिको पहुंच सकता है, भले ही वह अविवाहित, स्वच्छन्द हो। इस स्थितिसे और ऊंचा उठकर वह एकनिष्ठ दाम्पत्य-जीवनके बंधनमें बंधेगा और अपने तथा अपने साथीके हितके लिए अपनी भोग-वासनापर उतना अंकुश रखेगा जितना रख सकता है। यही नीति उसे ब्रह्मचर्यसे होनेवाले उच्चतर लाभोंका अधिकारी बना सकती है, अति भोगकी अनेक बुराइयोंके गढ़ेमें गिरनेसे तो निश्चय ही बचा सकती है।

## सामाजिक काम-नीति

समाज व्यक्तियोंके कार्य-कलापका विस्तार और उनका एक लड़ीमें गूंथा जाना है। अतः सामाजिक काम-नीति भी वैयक्तिक काम-नीतिसे ही उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि समाजको वैयक्तिक सदाचारके नियमोंको कुछ बढाना और कुछ मर्यादित करना पड़ता है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण विवाहकी व्यवस्था है। विज्ञानके पंडितोंने विवाहके इतिहासपर बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे हैं और इस विषयके तथ्य तो इतने इकट्ठे कर दिये हैं कि उनका ढेर लग गया है। इसलिए आज जो सुधार सुझाये जा रहे हैं उनकी चर्चा करनेके लिए उक्त विद्वानोंकी रायोंका निचोड़ दे देना भर काफी होगा।

प्राचीन कालमें मानव-वंशमें माताका पद पितासे बड़ा था। सन्तानो-त्पादन-कार्यमें वही प्रकृतिका प्रधान कारपरदाज थी और है। उसीको लेकर, उसीको केन्द्र बनाकर कुटुम्बकी उत्पत्ति हुई। फलतः एक जमानेमें

माताका राज विश्वकी व्यापक व्यवस्था थी। बहुपतित्व अर्थात् एक स्त्रीका अनेक पुरुषोंसे सम्बंध उस समय जायज माना जाता था। एशियाकी कुछ जंगली जातियोंमें अब भी इस प्रथाके अवशेष पाये जाते हैं। इस प्रथासे और अंशतः जातियों-कबीलोंके संघटनसे भी पतिके पदकी पैदाइश हुई। एक स्त्रीसे सम्बद्ध अनेक पुरुषोंमेंसे जो सबसे अधिक बलवान और संरक्षणमें समर्थ होता था उसका पद-अधिकार औरोंसे कुछ बड़ा होने लगा। पतिका अंग्रेजी पर्याय—'हस्बैंड' विवाह-प्रथाका इतिहास अपने भीतर लिये हुए है। यह मूलतः Hasboundi है जिसके मानी है घरमें रहनेवाला। उसपर घरमें रहना फर्ज होता था। औरों पर नहीं होता था। धीरे-धीरे वह घरकी रखवाली करनेवाले घरका मालिक बन गया और पीछे कोई-कोई 'गृहपति' जातिका सरदार या राजा भी बन गया। माताके राज या स्त्रीराज्यमें जैसे बहुपतित्वकी प्रथा उपजी थी पिता या पुरुषके राजमें वैसे ही बहुपत्नीत्वका रिवाज पैदा हुआ और फैला।

अतः सामाजिक दृष्टिसे नहीं तो मानव-शास्त्रकी दृष्टिसे पुरुष स्वभावतः अनेक पत्नियोंकी और स्त्री अनेक पतियोंकी कामना करनेवाली है। पुरुष अपनी कामनाकी किरणें सब ओर छिटकाता और जो स्त्री तत्काल उसे सबसे अधिक आकृष्ट करती उसीपर उसे केन्द्रित करता है। स्त्री भी यही करती है। पर मनुष्यके प्रकृति-प्रेरित, उसकी मनोरचनासे उद्भूत अव्यवस्थित आवेगोंपर थोड़ा-बहुत अंकुश न रखा गया तो मनुष्य-समाज टिक नहीं सकता, चाहे वह आदिम हो या आधुनिक। मनुष्यमें नीतिके सभी प्राणियोंमें ऐसे आवेगोंकी अनियतता होती है। समाजको इन आवेगोंके लिए विवाहके सिवा और कोई उपयुक्त अंकुश न मिला और अन्तमें सुनिश्चित विवाह—एक स्त्री-पुरुषके साथ एक स्त्री-पुरुषके ब्याह या पति-पत्नी सम्बन्ध—को ही अपनाना पड़ा। इसका विकल्प एक ही हो सकता है—स्वच्छन्दाचार और अन्ततः वर्तमान रूपमें समाजका पूर्ण विनाश। दोनों जीवन-प्रणालियोंका संघर्ष हमारी आंखोंके सामने चल रहा है और हम इसे देख सकते हैं। वेश्या-वृत्ति, अनियमित और स्वैर सम्बन्ध, व्यभिचार और तलाक रोज-ब-रोज हमारे सामने इस बातका सबूत पेश

कर रहे हैं कि एकनिष्ठ विवाह आदिम प्रकारके स्त्री-पुरुष सम्बन्धोंके ऊपर अपनी सत्ता अभी स्थापित नहीं कर सका है। कभी कर सकेगा ?

इस बीच हमें एक और उपायकी योग्यतापर विचार कर लेना होगा। वह है तो बहुत पुरानी चीज, पर पहले वह लुक-छिपकर अपना काम करती थी; इधर थोड़े दिनोंसे बिना घूंघट, बुरके के सामने आने लगा है। उसका नाम है 'जनन-निरोध' (बर्थ कंट्रोल); और अर्थ है ऐसी दवाओं और बाह्य साधनोंका व्यवहार जो गर्भ-स्थिति न होने दें। गर्भ-धारणमें स्त्रीपर तो बोझ पड़ता ही है, पुरुषको भी, खासकर भले स्वभावके पुरुषको, उसके कारण काफी अरसे तक संयम रखना पड़ता है। जनन-निरोध या गर्भ-निरोध संयमको अनावश्यक बना देता और इसका सुभीता कर देता है कि जबतक वासना या शरीर ही शिथिल न हो जाय तबतक हम मनमाना संभोग-सुख भोगते रहें। इसका असर विवाह-सम्बन्धके बाहर भी पड़ता है। यह अनियमित, अवैध और अफलजनक संभोगका दरवाजा खोल देता है, जो आधुनिक उद्योग-धंधों, समाज-शास्त्र और राजनीति सबकी दृष्टिसे खतरोंसे भरी हुई बात है। यहां इन बातोंकी विस्तारसे चर्चा नहीं की जा सकती। इतना ही कहना काफी है कि गर्भ-निरोधके साधनोंसे विवाहित-अविवाहित दोनों तरहके स्त्री-पुरुषोंके लिए अति संभोगका सुभीता हो जाता है। और ऊपर मैंने शरीर-शास्त्रकी जो दलीलें दी हैं वे सही हों तो इससे व्यक्ति और समाज दोनोंकी हानि होना अनिवार्य है।

## उपसंहार

किसान खेतमें जो बीज बिखेरता है वे सभी उगते नहीं। वैसे ही यह निबंध भी कुछ ऐसे लोगोंके हाथमें पड़ेगा जो इसे घृणाकी दृष्टिसे देखेंगे। कुछ तो अयोग्यता या निरे आलस्यसे इसे समझेंगे ही नहीं, कुछके लिए इसमें प्रकट किये हुए विचार बिलकुल नये होंगे और उनके मानसमें वे विरोध या क्रोधकी भावना भी जगा सकते हैं। पर थोड़े-से लोग ऐसे भी अवश्य

निकलेंगे जिन्हें यह सच्चा और कामका जान पड़े। मगर उनके मनमें भी शंका उठेगी। उनमें जो सबसे भोले होंगे वे कहेंगे—"आपकी दलीलोंके अनुसार तो संभोग कभी होना ही नहीं चाहिए। तब तो दुनियामें जीवधारी रह ही न जायंगे। इसलिए आपकी राय गलत होनी ही चाहिए।" मेरा जवाब यह है कि मेरे पास कोई ऐसा खतरनाक कतई नुस्खा नहीं है। जनन-निरोध जन्म रोकनेका सबसे प्रभावकर उपाय है और संयम या ब्रह्मचर्यकी तुलनामें बहुत जल्दी दुनियाको आदमियोंसे खाली कर देगा। मैं जो बात चाहता हूं वह तो बहुत सीधी है। अज्ञान और असंयत भोगके मुकाबलेमें दर्शन और विज्ञानकी कुछ सचाइयोंको खड़ा करके मैं अपने युगके स्त्री-पुरुष-सम्बन्धकी शुद्धिमें सहायता करना चाहता हूं।